एम.ए. हिन्दी M.A. (HINDI)

पाठ्यक्रम संख्या Hin-204

दूरस्थ एवं ऑनलाइन शिक्षा निदेशालय

Directorate of Distance & Online Education

जम्मू विश्वविद्यालय

University of Jammu

जम्मू

Jammu

पाठ्य सामग्री

STUDY MATERIAL

एम. ए. (हिन्दी)

M.A. (HINDI)

2024 ONWARDS

पाठ्यक्रम संख्या. 204	सत्र द्वितीय
COURSE CODE 204	**SEMESTER-2nd**
इकाई संख्या–2 से 4	आलेख संख्या. 1 –14
UNIT - 2 to 4	**LESSON No. 1-14**

Prof. Anju Sharma

Course Co-ordinator

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता

इस पाठ्य सामग्री का रचना स्वत्व/प्रकाशनाधिकार दूरस्थ एवं ऑनलाइन शिक्षा निदेशालय, जम्मू विश्वविद्यालय जम्मू–180006 के पास सुरक्षित है।

Printed and publised on behalf of the Directorate of Distance and Online Education, University of Jammu, Jammu by the Director, DD&OE, University of Jammu, Jammu

COURSE CONTRIBUTORS

1 **Prof. Rajni Bala** — **Lesson No. 5 to 8**
Head, Department of Hindi
University of Jammu.

2 **Dr. Shashank Shukla** — **Lesson No. 9 to 11**
Associate Professor, Department of Hindi
Central University of Jammu.

3 **Dr. Parshotam Kumar** — **Lesson No. 1 to 4**
Assistant Professor, Department of Hindi
University of Jammu.

4 **Mr. Devinder Kumar** — **Lesson No. 12 to 14**
Ph.D. Research Scholar NET, JRF
Department of Hindi
University of Jammu.

CONTENT EDITING / PROOF READING

Dr. Pooja Sharma
Lecturer, Department of Hindi
DD&OE, University of Jammu

* All rights reserve. No Part of this work may be reproduced in any form, by mimeograph or any other means, without permission in writing from the DD&OE, University of Jammu.

* The Script writer shall be responsible for the lesson / script submitted to the DD&OE and any plagiarism shall be his/her entire responsbility.

Printed at :- Rohini Printers / 2024 / 200 Books

Syllabus of Master Degree Programme in Hindi Under Non CBCS

Semester–2nd

Course Code : HIN-204 *Title :* **Swatantrayottar Hindi Kavita**

Credits : 6 **Maximum Marks : 100**

Duration of Examination : 3 Hrs. **(a) Internal = 20**

(b) External = 80

Syllabus for the Examination to be held in 2022, 2023 & 2024 May

इकाई–एक

निराला : निराला रचनावली (कुकुरमुत्ता, भिक्षुक, वह तोड़ती पत्थर; कुल तीन कविताएँ)।

अज्ञेय : अज्ञेय प्रतिनिधि कविताएँ–सं. विद्यानिवास मिश्र (यह दीप अकेला, कलगी बाजरे की, शब्द और सत्य, नदी के द्वीप; कुल चार कविताएँ)।

धूमिल : संसद से सड़क तक (मुनासिब कारवाई, मोचीराम, नक्सलबाड़ी, कुल तीन कविताएँ)।

केदारनाथ सिंह : प्रतिनिधि कविताएँ (अकाल में दूब, बुद्ध से, रोटी, नमक, उम्मीद नहीं छोड़ती कविताएँ, कुल पाँच कविताएँ)।

इकाई–दो

सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला : नयी कविता के प्रस्तोता।

कुकुरमुत्ता की प्रतीक योजना।

निराला का काव्य सौन्दर्य।

निर्धारित कविताओं की मूल संवेदना।

इकाई–तीन

अज्ञेय : काव्य यात्रा।

अज्ञेय : व्यक्ति और समाज का सम्बन्ध।

निर्धारित कविताओं की मूल संवेदना।

निर्धारित कविताओं का शिल्पगत सौन्दर्य।

इकाई–चार

जनवादी कवि धूमिल।

धूमिल : काव्य कला।

निर्धारित कविताओं का संवेदनागत और शिल्पगत वैशिष्ट्य।

केदारनाथ सिंह : काव्यगत विशेषताएँ।

वर्तमान परिदृश्य और केदारनाथ सिंह।

निर्धारित कविताओं का संवेदनागत और शिल्पगत वैशिष्ट्य।

प्रश्न पत्र का प्रारूप

कोर्स कोड Hin-204 के प्रश्नपत्र का प्रारूप इस प्रकार होगा

मुख्य परीक्षा (External Exam) **अंक = 80 समय = तीन घण्टा**

(क)	इकाई एक में निर्धारित प्रत्येक पुस्तक में से एक-एक सप्रसंग व्याख्या पूछी जायेगी। विद्यार्थी को कोई तीन सप्रसंग व्याख्याएँ करनी होंगी।	6×3=18
(ख)	शत-प्रतिशत विकल्प के साथ तीन दीर्घ उत्तरापेक्षी प्रश्न।	10×3=30
(ग)	शत-प्रतिशत विकल्प के साथ तीन लघु उत्तरापेक्षी प्रश्न।	6×3=18
(घ)	शत-प्रतिशत विकल्प के साथ तीन अति लघु उत्तरापेक्षी प्रश्न।	3×3=9
(ङ)	पाँच वस्तुनिष्ठ विकल्परहित प्रश्न पूछे जायेंगे।	1×5=5

विषय सूची

आलेख संख्या	आलेख	पृष्ठ संख्या
1.	सूर्यकांत त्रिपाठी निराला : नयी कविता के प्रस्तोता	4
2.	निराला का काव्य सौन्दर्य	14
3.	निर्धारित कविताओं की मूल संवेदना	25
4.	कुकुरमुत्ता की प्रतीक योजना	33
5.	अज्ञेय का काव्य–विकास	40
6.	अज्ञेय के काव्य में व्यक्ति और समाज	51
7.	निर्धारित कविताओं की मूल संवेदना	61
8.	निर्धारित कविताओं का शिल्पगत सौन्दर्य	73
9.	जनवादी कवि धूमिल	84
10.	धूमिल की काव्यकला	93
11.	निर्धारित कविताओं का संवेदनागत और शिल्पगत वैशिष्ट्य	105
12.	केदारनाथ सिंह की काव्यगत विशेषताएँ	131
13.	वर्तमान परिदृश्य और केदारनाथ सिंह	141
14.	निर्धारित कविताओं (नमक, बुद्ध से, अकाल में दूब, उम्मीद नहीं छोड़ती कविताएँ, रोटी) में संवेदनागत और शिल्पगत वैशिष्ट्य।	150

सूर्यकांत त्रिपाठी निराला : नयी कविता के प्रस्तोता

1.0 रूपरेखा

1.1 उद्देश्य

1.2 प्रस्तावना

1.3 सूर्यकांत त्रिपाठी निराला : नयी कविता के प्रस्तोता

1.4 निष्कर्ष

1.5 कठिन शब्द

1.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

1.1 उद्देश्य

सूर्यकांत त्रिपाठी निराला विविधता के कवि हैं। प्रस्तुत पाठ में नयी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालते हुए नयी कविता में सूर्यकांत त्रिपाठी निराला का स्थान निर्धारित किया जाएगा।

1.2 प्रस्तावना

निराला का व्यक्तित्व प्रतिभा संपन्न रहा है। आधुनिक हिन्दी साहित्य में निराला विद्रोह, क्रान्ति और परिवर्तन के कवि माने जाते हैं। विरोध और संघर्ष के बावजूद इन्होंने अपनी काव्यधारा को नवीन मार्ग से प्रवाहित किया। निराला के कृतित्व के अनेक पहलू हैं। एक तरफ कवि ने जूही की कली, प्रेयसी, अप्सरा, शेफालिका जैसी शुद्ध सात्विक सौन्दर्य की अवतारणा की तो दूसरी तरफ उसी कवि ने 'कुकुरमुत्ता' जैसी तीखी व्यंग्य प्रधान कविताएं भी लिखीं। एक तरफ 'बादल राग' कविता से क्रान्ति का आह्वान करते हैं तो दूसरी तरफ 'सरोज स्मृति' लिखकर संपूर्ण पाठक वर्ग को भाव विह्वल कर देते हैं।

1.3 सूर्यकांत त्रिपाठी निराला : नयी कविता के प्रस्तोता

नयी कविता

नयी कविता हिन्दी साहित्य में सन् 1951 के बाद की उन कविताओं को कहा गया जिनमें परम्परागत कविता से आगे नये भावबोध की अभिव्यक्ति के साथ ही नये मूल्यों और नये शिल्प विधान का अन्वेषण किया गया। यह प्रयोगवाद के बाद विकसित हुई हिन्दी कविता की नवीन धारा है। नयी कविता अपनी वस्तु–छवि और रूप छवि दोनों में प्रगतिवाद और प्रयोगवाद का विकास होकर भी विशिष्ट है। नयी कविता में मानव का वह रूप जो दार्शनिक है, वादों से परे है, जो एकांत में प्रकट होता है, जो प्रत्येक स्थिति में जीता है, वही प्रतिष्ठित हुआ है। इस कविता ने लघु मानव और उसके संघर्ष को बार–बार उकेरा है।

सन् 1954 में प्रयोगवाद नाम से असंतुष्टता की गई और प्रयोगवादी कविता को नई कविता का नाम दिया गया। डॉ. जगदीश गुप्त और डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी के संपादकत्व में 'नई कविता' नामक पत्रिका प्रकाशित होने लगी। इस प्रकार 'नई कविता' नाम प्रचलित हो गया। प्रयोगवादी कविता और नई कविता दो विभिन्न धाराएं न होकर एक काव्य धारा के दो पड़ाव हैं। नई कविता शुद्ध साहित्यिक आन्दोलन है। यह किसी वाद विशेष से प्रभावित नहीं है।

नयी कविता की प्रमुख प्रवृतियां

1.3.1 वादमुक्त

नयी कविता वाद–मुक्ति की कविता है। इससे पहले के कवि भी प्रायः किसी न किसी वाद का सहारा अवश्य लेते थे और यदि कवि वाद की परवाह न करें, किन्तु आलोचक तो उसकी रचना में काव्य से पहले वाद खोजता था, बाद से काव्य की परख होती थी। किन्तु नया कवि किसी भी सिद्धांत, मतवाद, संप्रदाय या दृष्टि के आग्रह् की कट्टरता में फँसने को तैयार नहीं। संक्षेप में नई कविता कोई वाद नहीं है, जो अपने कथ्य और दृष्टि में सीमित हो। कथ्य की व्यापकता और सृष्टि की उन्मुक्तता नई कविता की सबसे बड़ी विशेषता है।

1.3.2 लघु मानव की प्रतिष्ठा

मनुष्यों में व्यक्तिगत भिन्नता होती है, उसमें अच्छाइयाँ भी हैं और बुराइयाँ भी। नयी कविता के कवि को मनुष्य इन सभी रूपों में स्वीकार है। उसका उद्देश्य मनुष्य की समग्रता का चित्रण है। नयी कविता जीवन के प्रति आस्था रखती है। आज की क्षणवादी और लघुमानववादी दृष्टि जीवन–मूल्यों के प्रति स्वीकारात्मक दृष्टि है।

1.3.3 घोर वैयक्तिकता

नयी कविता का प्रमुख विषय निजी मान्यताओं, विचारधाराओं एवं अनुभूतियों का चित्रण करना है।

यह कविता अहम के भाव से जकड़ी हुई है। वह आत्म–विज्ञापन का घोर समर्थक है। उदाहरण के लिए कुछ पंक्तियां–

''साधारण नगर के
एक साधारण घर में
मेरा जन्म हुआ
बचपन बीता अति साधारण
साधारण खान–पान...
तब मैं एक एकांकी मन
मुझे परीक्षा में विलक्षण श्रेय मिला।''

1.3.4 निराशा का भाव

नयी कविता में मनुष्य की असहायता, विवशता, अकेलापन, मानवीय–मूल्यों का विघटन, सामाजिक विषमताओं तथा युद्ध के भयंकर परिणामों का चित्रण किया गया है। इसमें कवि के निराश मन का स्वर उभरा है। कवि अपने चारों तरफ प्रश्न ही प्रश्न अनुभव करता है, किन्तु उनका उत्तर उसके पास नहीं है–

''प्रश्न तो बिखरे यहां हर ओर हैं,
किन्तु मेरे पास कुछ उत्तर नहीं।''

1.3.5 नयी कविता में आस्था और विश्वास

इस कविता में निराशा, अनास्था और अविश्वास के साथ–साथ आशा और विश्वास के स्वर भी सुनाई पड़ते हैं। वस्तुतः आरम्भ में इन कवियों में घोर निराशा दिखाई देती है। लेकिन बाद में यही कवि आशा और विश्वास से परिपूर्ण कविताएं लिखते हैं। आशा का स्वर आगे चलकर स्वस्थता का प्रतीक बन गया। कवि अज्ञेय एक स्थल पर विश्वास करते हुए कहते भी हैं–

''आस्था न काँपे,
मानव फिर मिट्टी का भी देवता हो जाता है।''

1.3.6 नयी कविता में नास्तिकता

बौद्धिक एवं वैज्ञानिक युग से संबंधित होने के कारण इस कविता में भावनात्मक दृष्टिकोण से विरोध दिखाई पड़ता है। नए कवि का ईश्वर, भाग्य, मंदिर और अन्य देवी–देवताओं में विश्वास कम है। वह स्वर्ग–नरक का अस्तित्व नहीं मानता।

1.3.7 नयी कविता में व्यंग्य

इन कविताओं में कवियों ने आज के युग में व्याप्त विषमताओं का व्यंग्यात्मक चित्रण किया है। व्यंग्यात्मक शैली में जीवन और सभ्यता के चित्रण में कवि को अद्‌भुत सफलता भी मिली है। श्रीकांत वर्मा ने 'नगरहीन मन' शीर्षक कविता में आज के नागरिक जीवन की स्वार्थपरता, छलकपटपूर्ण जिन्दगी को स्वर दिया है। अज्ञेय की कविता 'सांप' में भी नागरिक सभ्यता पर तीक्ष्ण कटाक्ष है–

''सांप! तुम सभ्य तो हुए नहीं,
नगर में बसना भी तुम्हें नहीं आया।
एक बात पूछूं ? उत्तर दोगे ?
फिर कैसे सीखा डसना
विष कहां से पाया।''

1.3.8 भोगवाद और क्षणवाद

नयी कविता में क्षणवादी विचारधारा ने ही भोगवाद को जन्म दिया। इस कविता में भोगवाद और वासना का मुख्य स्वर है। नया कवि आध्यात्मिक दृष्टिकोण के अभाव के कारण ''खायो, पियो और मौज उड़ाओ'' सिद्धान्त का पक्षपाती बन गया। इस सिद्धान्त के बहाव में उसने लोक–मर्यादा का उल्लंघन भी किया। वह आत्मिक सौन्दर्य की उपेक्षा कर शारीरिक सौन्दर्य का वरदान मांगता है। इस प्रकार नई कविता कहीं–कहीं समाज में अश्लीलता, अनैतिकता और अराजकता का वातावरण उत्पन्न करती है।

1.3.9 भाषा

नए कवियों ने खड़ी बोली के आधुनिक रूप को अनेक रूपों में प्रयुक्त किया है तथा अनेक नई विशेषताओं एवं क्रिया पदों का भी निर्माण किया है। इन्होंने भाषा के सौन्दर्य में वृद्धि के लिए नवीन प्रतीक योजना, बिम्ब विधान एवं उपमान योजना को भी अपनाया है। प्राकृतिक बिम्ब का एक नवीन उदाहरण दर्शनीय है–

''बूंद टपकी एक नभ से
किसी ने झुक कर झरोखे से
कि जैसे हंस दिया हो!''

1.3.10 छंद

नए कवियों ने छंद के बन्धन को स्वीकार न करके मुक्त परम्परा में ही विश्वास रखा है। कहीं लोकगीतों के आधार पर अपने गीतों की रचना की है, कहीं अपने क्षेत्र में नए प्रयोग भी किए हैं। कुछ ऐसी भी

कविताएं लिखी हैं जिनमें न लय है न ही गति है, बल्कि पद्य की सी शुष्कता और नीरसता है। कुछ नए कवियों ने रुबाइयों, गज़लों और सॉनेट पद्धति का भी उपयोग किया है।

1.3.11 उपमान, प्रतीक एवं बिंब विधान

इन कवियों ने सर्वथा नवीन उपमानों, प्रतीकों और बिम्बों का प्रयोग किया है। अज्ञेय तो पुराने उपमानों से तंग आ गए थे। अतः वे नवीन उपमानों के प्रयोग पर बल देते हैं। नया कवि वैज्ञानिक उपमानों के प्रयोग को महत्त्व देता है। जैसे–

''प्यार का बल्ब फ्यूज हो गया''
''प्यार का नाम लेते ही
बिजली के स्टोव सी
वो एकदम सुर्ख हो जाती है।''

इन कवियों ने प्राकृतिक, वैज्ञानिक, पौराणिक तथा यौन प्रतीकों का खुलकर प्रयोग किया है। कलात्मक प्रतीक का उदाहरण–

''ऊनी रोएंदार लाल–पीले फूलों से
सिर से पांव तक ढका हुआ
मेरी पत्नी की गोद में
छोटा–सा एक गुलदस्ता है।''

नयी कविता के बिम्ब का धरातल भी व्यापक है। इन कवियों ने जीवन, समाज और उससे संबंधित समस्याओं के लिए सार्थक और सटीक बिम्बों की योजना की है। ये बिम्ब कवि कभी मानव जीवन से चुनता है तो कभी प्रकृति से।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि नई कविता का प्रत्येक कवि अपनी निजी विशिष्टता रखता है। नए कवियों के लिए प्रधान है सम्प्रेषण, न कि सम्प्रेषण का माध्यम। इस प्रकार हम देखते हैं कि नयी कविता कथ्य और शिल्प–दोनों ही दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। नयी कविता आज के मनुष्य के व्यस्त जीवन का दर्पण और आस–पास की सच्चाई की तस्वीर बनकर उभरी है। नयी कविता के दो तत्त्व प्रमुख हैं–अनुभूति की सच्चाई और बुद्धिमूलक यथार्थवादी दृष्टि।

नई कविता और सूर्यकांत त्रिपाठी निराला

हिन्दी साहित्य में छायावाद के आधारस्तम्भों में से एक प्रयोगवादी और प्रगतिशील चेतना के कवि सूर्यकांत त्रिपाठी निराला हैं। वे एक कवि, उपन्यासकार, निबन्धकार और कहानीकार थे। उन्होंने हिन्दी काव्य

जगत में नई कविता का सूत्रपात किया। परम्परागत काव्य दृष्टि से इतर उन्होंने छंद मुक्त रचनाएं लिखीं। भाषा–शैली में अनेकानेक प्रयोग किए। निराला ने निजी जीवन की विपत्तियों को झेलते हुए स्वयं को साहित्य की साधना में पूरी तरह समर्पित कर दिया और यही कारण है कि वे महाप्राण कहलाए।

नयी कविता का कोई एकांगी चरित्र नहीं है जैसा कि एक समय उसे कुंठा–हताशा–संत्रास–मोहभंग–अकेलेपन आदि से घेरकर मान लिया गया था। साथ ही इस काव्यधारा के केन्द्र में स्थित आलोक–पुरुष (एक समय) निराला माने गए। नई कविता की अधिकांश प्रवृत्तियां निराला के काव्य में मिलती हैं। निराला नई कविता के प्रेरणा स्त्रोत माने जाते हैं।

निराला के काव्य की विशेषताएं

1. व्यक्तिगत सुख–दुख की अभिव्यक्ति

निराला छायावादी कवियों में ऐसे कवि हैं जिन्होंने अपनी रचनाओं में अपने व्यक्तिगत सुख–दुख की अनुभूतियों को व्यक्त किया है। उनका पूर्ण जीवन दुख, करुणा एवं निराशा के साथ–साथ संघर्ष एवं विषमताओं के साथ बीता। इन्हीं की अभिव्यक्ति उन्होंने अपने काव्य में की है। 'जुही की कली', 'मैं अकेला', 'राम की शक्ति पूजा', 'स्नेह निर्झर बह गया', 'सरोज स्मृति' आदि असंख्य उनकी ऐसी रचनाएं हैं जिनमें व्यक्तिगत सुख–दुखों को सुन्दर अभिव्यक्ति के साथ पिरोया गया है। उदाहरण–

''स्नेह निर्झर बह गया है
रेत ज्यों तन रह गया है
आम की यह डाल जो सुखी दिखी
कह रही है, ''अब यहां पिक या शिखी''
नहीं आते पंक्ति मैं वह हूँ लिखी
नहीं जिसका अर्थ
जीवन ढह गया है।''

2. आत्म गौरव एवं आत्माभिमान

निराला का संपूर्ण काव्य आत्म गौरव एवं आत्म अभिमान का काव्य है। अपने उग्र स्वभाव एवं आत्माभिमान के कारण वह धीरे–धीरे अपने समकालीनों से कटते गए। निर्भय होकर सच्ची बात कहने के कारण उन्होंने साहित्य जगत में अनेक शत्रु बना लिए। इस कारण कई बार उनकी उपेक्षा भी हुई, जिसके कारण उनका आहत अभिमान और अधिक बढ़ गया। वे लिखते हैं–

''दिए हैं मैंने जगत को फूल फल
किया है अपनी प्रभा से चकित चल''

3. प्रगतिशील विचारधारा

निराला केवल छायावादी कवि ही नहीं थे अपितु वे प्रगतिवादी कवि भी थे। उनका काव्य दलित, उपेक्षित और कमजोर वर्ग के प्रति विशेष सहानुभूति रखता है। निराला के हृदय का करुण भाव समाज के उपेक्षित, कमजोर, पीड़ित एवं शोषित वर्गों की रक्षा को अर्पित है। 'विधवा' की पीड़ा उन्हें द्रवित करती है तो भिखारी की दीनता एवं भूख उन्हें करुणा से भर देती है। कड़कड़ाती धूप में इलाहाबाद के पथ पर पत्थर तोड़ती मजदूर स्त्री का करुण चित्रण पाठक के मन को अनायास ही छू लेता है।

''वह तोड़ती पत्थर
देखा मैंने उसे इलाहाबाद के पथ पर
देख कर कोई नहीं
देखा मुझे उस दृष्टि से
जो मार खा रोई नहीं।''

4. व्यंग्य चित्रण

निराला ने समाज में फैली विकृतियों एवं विद्रूपताओं का व्यंग्यात्मक चित्रण किया है। 'कुकुरमुत्ता' कविता में उनके तीक्ष्ण व्यंग्य को देखा जा सकता है। 'कुकुरमुत्ता' निम्न एवं कमजोर वर्ग का प्रतिनिधि है और वह पूंजीवादी गुलाब को चुनौती देता हुआ कहता है–

''अबे सुन बे गुलाब
भूल मत जो पाई तूने खुशबू रंगों आब
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट
डाल पर इतरा रहा है कैपिटलिस्ट।''

5. मुक्त छंद का प्रयोग

निराला ने छंदों का बन्धन कभी स्वीकार नहीं किया। उन्होंने अपनी ओजमयी वाणी से सिद्ध कर दिया कि काव्य के लिए छंद का बंधन व्यर्थ है। उनकी मुक्त छंद की रचनाओं में एक अपनी लय है, अपना सौन्दर्य है। इन्होंने छंद संबंधी प्राचीन मान्यताओं में आमूलचूल परिवर्तन करके मुक्त छंद की पद्धित का सूत्रपात किया। हिन्दी साहित्य को उनकी यह मौलिक देन है। मुक्त छन्द की महत्ता के संबंध में निराला ने लिखा है–''मनुष्यों की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है। मनुष्य की मुक्ति कर्मों के बन्धन से छुटकारा पाना है और कविता की मुक्ति छन्दों के शासन से अलग होना।''

परिमल की भूमिका में निराला ने मुक्त छन्द के विषय में बहुत कुछ लिखा है। उनका कहना है कि

मुक्त छन्द का समर्थक उसका प्रवाह ही है। इस कथन के समर्थन में निराला ने 'जुही की कली' की आरम्भिक पंक्तियां उद्धृत की हैं और विवेचना प्रस्तुत की है–

''विजय वन बल्लरी पर
सोती थी सुहाग भरी
स्नेह स्वप्न मग्न अमर कोमल तनु–तरुणी
जुही की कली
युग बन्द किए–शिथिल पत्रांक में।''

निराला का सर्वाधिक विरोध उनके मुक्त काव्य–प्रवर्त्तन को लेकर हुआ और सर्वाधिक प्रसिद्धि भी उसी की वजह से मिली।

6. निराला के काव्य में प्रयोगशीलता

नव या नूतन के प्रति अभूतपूर्व ललक निराला के काव्य में जगह–जगह मिलती है। वे अन्य भाषाओं से शब्द लेकर अपनी कविता में नये प्रयोग करते थे, इसी तरह के प्रयोग, लय, छंद, अलंकार आदि के भी करते थे और अपनी कविता में नयापन लाने की कोशिश करते थे। ''वीणावादिनी वर दें'' का वाचक सरस्वती से यही वरदान मांगता है–

''नव गति, नव लय, ताल छंद नव
नवल कंठ, नव जलद–मंद्र श्व
नव नभ के नव विहग वृंद को
नव पर नव स्वर दे।''

'नव स्वर' की इस चाह के कारण ही निराला के काव्य में प्रयोगशीलता की विविध धाराएं देखने को मिलती हैं।

7. सामान्य की प्रतिष्ठा

सामान्य की प्रतिष्ठा को स्थापित करने के लिए निराला 'कुकुरमुत्ता' में आ कर सारी काव्य–प्रणाली, शिल्प संगठन और भाषित संरचना की नये सिरे से छानबीन करते हैं। यह छानबीन और खोज, और नया संघटन लगभग पुराने के संपूर्ण अस्वीकार या उसके परित्याग से उपजा है। इस कविता का अन्तिम उद्देश्य है अभिजात पर व्यंग्य और साधारण की सार्थकता। इस कविता में कुकुरमुत्ता गुलाब पर व्यंग्य करता है–

''अबे सुन बे गुलाब, भूल मत जो पाई खुशबु–रंगों–आब,
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट, डाल पर इतरा रहा है कैपीटलिस्ट।''

यहां पर गुलाब पूंजीपतियों का प्रतीक है और कुकुरमुत्ता सर्वहारा अर्थात् गरीब और शोषित वर्ग का प्रतीक है। इन प्रतीकों के माध्यम से निराला ने सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक वैषम्य का चित्र प्रस्तुत किया है।

1.4 निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि निराला के काव्य के शब्द बन्ध के नये प्रयोग इनकी गद्यात्मकता और सपाट अकाव्यात्मकता में से रिसने वाला नये ढंग का कवित्व, भाषा का छिदरा–खुला संघटन, अन्दर तक चीरता हुआ व्यंग्य, उन्मुक्त हास्य और कठोरता के कवच में छिपी अगाध, अप्रत्यक्ष करुणा तथा उपेक्षित के उन्नयन के प्रति गहरी आस्था निराला की रचना सक्षमता और काव्य दृष्टि के इस नये आयाम को अपने सफलतम रूप में हमारे सामने उद्घाटित करती हैं। नयी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियां जैसे वैयक्तिकता, व्यक्तिगत सुख–दुख का वर्णन, निराशा का भाव, व्यंग्य, मुक्त छंद, नवीन उपमान, प्रतीक एवं बिम्ब विधान, लघु मानव की प्रतिष्ठा, पीड़ित, शोषित, अपेक्षित के प्रति सहानुभूति आदि सब निराला के काव्य में स्पष्टता देखने को मिलती हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि निराला नयी कविता के प्रेरणा स्त्रोत रहे हैं। समस्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि निराला नई कविता के प्रस्तोता अर्थात् प्रवर्तक कवि हैं। हिन्दी साहित्य में उनका विशिष्ट स्थान है।

1.5 कठिन शब्द

शेफालिका, उन्मुक्तता, वैयक्तिकता, विलक्षण, संत्रास, विद्रूपता

1.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र. 1 नयी कविता में निराला का स्थान निर्धारित कीजिए ?

_____

_____

_____

प्र. 2 निराला के काव्य में 'मुक्त छन्द' पर प्रकाश डालिए।

_____

_____

_____

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. हिन्दी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि–द्वारिका प्रसाद सक्सेना।
2. निराला–इन्द्रनाथ मदान।
3. आत्महन्ता आस्था निराला–डॉ. दूधनाथ सिंह।
4. कविता के नए प्रतिमान–नामवर सिंह।

———————

निराला का काव्य सौन्दर्य

2.0 रूपरेखा

2.1 उद्देश्य

2.2 प्रस्तावना

2.3 निराला का काव्य सौन्दर्य

2.4 निष्कर्ष

2.5 कठिन शब्द

2.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

2.1 उद्देश्य

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' आधुनिक हिन्दी साहित्य के सुदृढ़ स्तम्भ माने जाते हैं। उन्होंने अपने विपुल साहित्य के द्वारा आधुनिक हिन्दी साहित्य को समृद्ध बनाया और उसे गौरवान्वित किया। यहाँ निराला के काव्य में शोषितों के प्रति सहानुभूति, राष्ट्रीयता की भावना, प्रकृति चित्रण, रहस्यवाद की भावना, मुक्त छन्द योजना तथा इनकी काव्य भाषा पर प्रकाश डाला गया है।

2.2 प्रस्तावना

निराला छायावाद के महत्त्वपूर्ण कवि हैं। निराला एक ऐसे केन्द्रबिन्दु का नाम है जिसमें भारतीय संस्कृति वृत्त के नूतन और पुरातन सभी रूप, सभी रंग, स्वर और सारे आकार परिलक्षित होते रहे हैं। उनका जीवन स्वयं अपने आप में एक साहित्य है, जिसमें संघर्षों और वेदनाओं के ऐसे अनगिनत मार्मिक चित्रों की शृंखला सजी हुई है जिन्हें देखकर हम विचार करने लगते हैं कि निराला का जीवन पहले पढ़े या उनका साहित्य।

2.3 निराला का काव्य सौन्दर्य

निराला हिन्दी–साहित्य के एक ऐसे युगान्तकारी कवि हैं, जिनकी रचनाओं में तत्कालीन मानव की पीड़ा, परतन्त्रता एवं परवशता के प्रति उत्पन्न तीव्र आक्रोश की ध्वनि सुनाई पड़ती है। अन्याय एवं असमानता के प्रति विद्रोह की घोषणा है तथा विषमताओं एवं विपरीत परिस्थितियों से संघर्ष करने की तीव्र गर्जना सुनाई पड़ती है। ऐसा क्रान्तिकारी कवि एक ओर अपनी ओजस्वी कविता द्वारा ज्वालामुखी का विस्फोट भी करता है, तो दूसरी ओर नारी के दिव्य सौन्दर्य की अलौकिक झांकी प्रस्तुत करता हुआ प्रेम के मर्मस्पर्शी गीत भी गाता है।

निराला छायावादी कवियों में सबसे अधिक विद्रोही, सर्वाधिक उदात्त, जन–जीवन के प्रति सबसे अधिक संवेदनशील तथा जागरुक कवि रहे हैं। उनके काव्य में हृदयवाद, बुद्धिवाद, दार्शनिकता और कवित्व का पुट एक साथ ही विद्यमान है। निराला का विद्रोही स्वर समाज, साहित्य, धर्म और नैतिकता सभी स्तरों पर मुखरित हुआ है। वह हिन्दी के सर्वाधिक प्रगतिशील और निराले कवि हैं। उनके व्यक्तित्व में जहाँ एक और विरोधों का समन्वय है, वहीं दूसरी ओर उनके काव्य में ठीक इसका विरोधाभास है।

निराला के काव्य सौन्दर्य को उनके काव्य की निम्नलिखित विशेषताओं के माध्यम से समझा जा सकता है–

2.3.1 शोषितों के प्रति सहानुभूति

निराला वर्ण तथा वर्ग व्यवस्था को शोषण का तंत्र मानते हैं और वे दलित–उपेक्षित–शोषित वर्ग में रहकर उनकी लड़ाई लड़ना अपना कर्तव्य समझते हैं। वे निस्संकोच निर्भय होकर दो टूक शब्दों में उनकी शोषण–गाथा कहते हैं और मुक्त कंठ से शोषितों के मुख से विरोध के शब्द कहलवाते हैं–

''भूल मत जो पाई खुशबू, रंगोआब
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट
डाल पर इतरा रहा है केपीटलिस्ट''

यही स्वर विधवा, भिक्षुक, दीन, वह तोड़ती पत्थर, मित्र के प्रति, यह है बाजार, मेरे घर के पश्चिम, बापू तुम यदि मुर्गी खाते, 'सड़क के किनारे' आदि कविताओं में मिलता है जनसाधारण के दर्द को देखकर हम आंसू बहा सकते हैं लेकिन उनकी दीन–हीन स्थिति का यथावत चित्रण कविता की भाषा में करना निराला की कलम का कमाल है।

2.3.2 आत्माभिव्यक्ति

निराला का काव्य ही उनका जीवन दर्शन है। वह मूलतः कवि थे। जीवन भर कवि–कर्म करते रहे। निराला का संपूर्ण व्यक्तित्व उनकी कविताओं में समाहित है। उनका काव्य पारदर्शी है। उनका जीवन–संघर्ष वस्तुतः उनका रचना–संघर्ष है।

''दुख ही जीवन की कथा रही
क्या कहूँ आज जो नहीं कही।''

जीवन का सुख–दुख, विक्षुब्धि, डूबते–उतरते नैराश्य, अपमान, शारीरिक तथा मानसिक सन्ताप, आशाएँ और विश्वास सब उनकी कविताओं में स्पष्ट दिखाई देता है।

निराला को अपने जीवन–काल में बहुत विरोधों का सामना करना पड़ा। साहित्य के प्रति ईमानदारी के एवज में उन्हें आरम्भ में समुचित मान–सम्मान भी नहीं मिला। केवल अभाव और अर्थ–संकट का सामना किया। वे यह सब बताने से भी नहीं चूकते–

''जाना तो अर्थागमोपाय
पर रहा सदा संकुचित–काय
लखकर अनर्थ आर्थिक पथ पर
हारता रहा मैं स्वार्थ समर।''

अतः वह अपनी अत्मानुभूति को सबकी अनुभूति बनाकर साहित्य में प्रस्तुत करते हैं। यही उनका रचनात्मक सौन्दर्य है।

2.3.3 राष्ट्रीयता एवं देश प्रेम की भावना

निराला का कृतित्व ही राष्ट्रीय भावनाओं से ओत–प्रोत नहीं है, अपितु उनका व्यक्तित्व भी राष्ट्रीयता के ताने–बाने से गुँथा हुआ है। स्वामी विवेकानन्द से आध्यात्मिकता, रामकृष्ण मिशन से अद्वैतवादी भावना तथा गाँधी और तिलक के विद्रोह की खाद पाकर निराला की राष्ट्रीयता अंकुरित और पल्लवित हुई है। तत्कालीन सामाजिक और आर्थिक जीवन की विषमता, अतीत के उज्ज्वल वैभव की गरिमा और भविष्य की मनोहारिणी कल्पना ने उनकी राष्ट्रीय चेतना को गतिशील बनाया है।

राष्ट्रीयता एवं देश प्रेम का स्वर निराला के काव्य में प्रारम्भ से ही मुखरित रहा है। 'जागो फिर एक बार' कविता में देश प्रेम की भावना ने पर्याप्त विकास पाया है। कवि सम–सामयिक राजनीतिक चेतना को कला एवं दर्शन के माध्यम से व्यक्त करता है। राष्ट्रीय जागरण की कोख में पलने पनपने वाला स्वच्छदतावादी छायावादी कवि रहस्यात्मकता और राष्ट्र प्रेम की भावनाओं को साथ–साथ लेकर चला है। सच तो यह है कि राष्ट्रीय जागरण में छायावाद के व्यक्तिवाद को असामाजिक पदों पर भटकने से बचा लिया। निराला अपने युग से निश्चित रूप से प्रभावित हुए हैं–

''जागो फिर एक बार!
सिंहनी की गोद से

छीनता रे शिशु कौन ?
मौन भी क्या रहती वह
रहते प्राण ? रे अज्ञान''

देश का सांस्कृतिक पतन, उसकी राजनीतिक जीर्णावस्था कवि को विह्वल कर देती है और इस तिमिर से पार होने की उसकी महत्वाकांक्षा देश को उत्थान का संदेश देती है।

'महाराज शिवाजी का पत्र' में कवि आपसी फूट का वर्णन कर एकता की भावना जागृत करता है–

''जितनी विरोधी शक्तियों से हम लड़ रहे हैं आपस में सच मानो खर्च है यह, शक्तियों का व्यर्थ ही।''

देश प्रेम की धारा निराला के काव्य में आदि से अन्त तक इसी प्रकार अबाध गति से बहती रही। 'जागो फिर एक बार' तो अपने आप में सर्वोत्कृष्ट और सर्वाधिक सबल रचना है और दूसरी कविता 'महाराज शिवाजी का पत्र में भी उत्थान एवं जागरण के स्वर प्राप्त होते हैं।

संक्षेप में कह सकते हैं कि मानवतावाद की विस्तृत विशाल भाव–भूमि पर कवि की राष्ट्रीयता खड़ी है, जो अपने राष्ट्र एवं राष्ट्र के लोगों के लिए सोचती है। उनकी राष्ट्रीयता धार्मिक, साम्प्रदायिक अथवा जातीय संकीर्णता से कोई संबंध नहीं रखती।

2.3.4 प्रकृति चित्रण

निराला की सौन्दर्य भावना का एक पक्ष उनके प्रकृति चित्रण से जुड़ा हुआ है। प्रकृति का रूप–सौन्दर्य उनके काव्य सौन्दर्य का सर्वाधिक सशक्त विभाव है–आलंबन के रूप में भी और उद्दीपन के रूप में भी। इसके प्रचुर उदाहरण उनकी कविताओं में विद्यमान हैं। अपने जीवन–दर्शन और विश्व दृष्टि की अभिव्यक्ति में भी निराला ने प्रकृति–सौन्दर्य के चित्रण को माध्यम बनाया है। जैसे–

''अरूण पंख तरूण किरण
खड़ी खोलती है द्वार।''

निराला की 'संध्या सुन्दरी' कविता भी प्रकृति से ही संबंधित है, जिसमें सौन्दर्य के मानवीकरण के माध्यम से प्रकृति के रूप व्यापार पर नारी के रूप व्यापार का आरोप किया गया है–

दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह संध्या–सुन्दरी परी–सी
धीरे–धीरे–धीरे

मानवीकरण के साथ–साथ प्रकृति के प्रति कवि के हृदय में कौतूहल भाव भी है। इसी भाव से प्रेरित होकर कवि यमुना से प्रश्न करता है–

यमुने, तेरी इन लहरों में
किन लहरों की आकुल तान।
पथिक प्रिया–सी जाग रही है
किस अतीत के गौरव गान।

निराला के काव्य में प्रकृति–वर्णन के लगभग सभी अंग हैं। कहीं पर वे प्रकृति का उपदेशात्मक चित्रण करते हैं, कहीं पर उसका अलंकारिक चित्रण करते हैं, तो कहीं उसे पृष्ठभूमि के रूप में उपस्थित करते हैं। वे कहीं उसके चेतन स्वरूप को, तो कहीं कोमल एवं रौद्र स्वरूप को और अन्यत्र रहस्यमय स्वरूप को चित्रित करते हैं। प्रकृति उनके लिए मनः शान्ति का भी साधन है तथा क्रोध एवं खीझ की अभिव्यक्ति का भी।

2.3.5 नारी की महानता और पवित्रता का वर्णन

नारी को संतों और भक्तों ने वासना की पुतली और मायाविनी के रूप में देखा था। रीतिकाल में नायिका केवल काम–क्रीड़ा का साधन मात्र बनकर रह गई थी। छायावादी कवियों ने नारी के मन की सूक्ष्म गहराइयों की थाह ली। निराला ने नारी के 'शक्ति' रूप की उपासना की। वह उनकी दृष्टि में अबला न रहकर सबला होकर समादृत हुई। नारी की दीनता, निराशा और असहायता का चित्रण करते हुए भी निराला ने उसे प्रेरणा और शक्ति–स्त्रोत के रूप में देखा। वह वासना का विष होकर साधना का अमृत है। 'विधवा' उसे इष्टदेव के मन्दिर की पूजा–सी पवित्र और दीप–शिखा–सी शान्त लगती है।

निराला का नारी–चित्रण अपेक्षाकृत सूक्ष्म एवं शीलवान है। उसमें नग्नता एवं स्थूलता कहीं नहीं आ पाई। प्रेम के क्षेत्र में जाति, वर्ण, सामाजिक रीति, नीति, रुढ़ियां और मिथ्य मान्यतायें एवं मर्यादाएं मान्य नहीं हैं।

दोनों हम भिन्न वर्ण, भिन्न जाति, भिन्न रूप।
भिन्न धर्म भाव, पर केवल अपनाव से, प्राणों से एक थे।।

नारी चित्रण में भी स्थूल सौन्दर्य की अपेक्षा उसकी आत्मा के सौन्दर्य का चित्रण ही अधिक किया गया है। नारी के प्रति उनके हृदय में गहरी सहानुभूति है। इनके काव्य में नारी के विविध रूपों का चित्रण हुआ है। कहीं वह जीवन की सहचरी एवं प्रेयसी है और कहीं उन्हें वह प्रकृति में व्याप्त होकर अलौकिक भावों से अभिव्यक्त करती हुई दिखाई देती है। कहीं वह उसके दिव्य दर्शन की झलक पाते हैं तो कहीं उसको लक्षित करके कवि प्रेमोन्माद की अस्फुट मनोवृति का चित्रण करते हैं।

(प्रिय) यामिनी जागी।
अलस पंकज दृग अरुण मुख
तरुण अनुरागी।
खुले केश अशेष शोभा भर रहे
पृष्ठ ग्रीवा बाहु उर पर तर रहे।

2.3.6 वेदना, निराशा एवं दुखवाद की स्थिति

वेदना, निराशा, दुखवाद एवं करुणा की प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति छायावाद की एक प्रमुख विशेषता है। ये कवि वेदना एवं दुख को जीवन का सर्वस्व एवं उपकारक मानते हैं। निराला ने वेदना एवं निराशा को कई प्रकार से प्रकट किया है–

दिये हैं मैंने जगत को फूल फल,
किया है अपनी प्रभा में चकित चल,
यह अनश्वर था सफल पल्लिवत तल
ठाट जीवन का वही जो ढह गया है।

प्रत्यक्ष रूप से निराला के जीवन की गतिविधि का दिग्दर्शन कराने वाली कविताओं में 'सरोज स्मृति' का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस कविता के प्रारम्भ में कवि को अपने पिता होने की निरर्थकता की अनुभूति होती है और वह पुत्री के लिए कुछ भी न कर पाने पर आत्म–ग्लानि के साथ लिखता है–

धन्ये, मैं पिता निरर्थक था,
कुछ भी तेरे, हित कर न सका
जाना तो अर्थागमोपाय,
पर रहा सदा संकुचित काय।
लखकर अनर्थ आर्थिक पथ पर,
हारता रहा मैं स्वार्थ–समर।

2.3.7 रहस्यवाद की भावना

अन्य छायावादी कवियों की भान्ति निराला के काव्य में भी रहस्य लोक के ऊर्ध्व शिखरों को छूने का प्रयास परिलक्षित होता है। उनकी रहस्य चेतना न तो उपनिषद तथा मध्ययुगीन संतों की भान्ति संकीर्णता से ग्रस्त रही है और न ही इनमें भावुकता ही रही है। वे रहस्यवादी के साथ–साथ दार्शनिक भी हैं। उन्होंने रहस्याकुल क्षणों में प्रकृति के भीतर कभी अपनी अलोक सुन्दरी प्रिया के रूप को चित्रित किया है तो कहीं सामान्य मानव अनुभूतियों का दैवीकरण। वे रहस्य रचना के क्षणों में भी पूर्ण भावुक बने रहे हैं–

तुम गन्ध कुसुम कोमल पराग
मैं मृदुगति मलय समीर
तुम स्वेच्छाचारी मुक्त पुरुष
मैं प्रकृति, प्रेम जंजीर
तुम शिव हो, मैं हूँ शक्ति
तुम रघुकुल गौरव रामचन्द्र
मैं सीता अचला भक्ति।

2.3.8 मुक्त छन्द योजना

निराला न केवल भाव एवं विचारों की दृष्टि से विद्रोही कवि कहलाते हैं, अपितु छन्द की दृष्टि से भी निराला एक क्रान्तिकारी एवं विद्रोही कवि हैं। इन्होंने छन्द संबंधी प्राचीन मान्यताओं में आमूलचूल परिवर्तन करके मुक्त छन्द की पद्धति का श्रीगणेश किया। हिन्दी साहित्य को उनकी यह मौलिक देन है। 'मुक्त छन्द' की महत्ता के संबंध में निराला ने लिखा है–''मनुष्यों की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है। मनुष्य की मुक्ति कर्मों के बन्धन से छुटकारा पाना है और कविता की मुक्ति छन्दों के शासन से अलग होना।''

परिमल की भूमिका में निराला ने मुक्त छन्द के विषय में बहुत कुछ लिखा है। उनके कथन का सारांश यह है कि मुक्त छन्द का समर्थक उसका प्रवाह ही है। इस कथन के समर्थन में निराला ने 'जुही की कली' की आरम्भिक पंक्तियां उद्धृत की हैं और विवेचना प्रस्तुत की है–

विजय वन वल्लरी पर
सोती थी सुहाग भरी
स्नेह स्वप्न मग्न अमर कोमल तनु–तरुजी
जुही की कली
युग बन्द किए–शिथिल पत्रांक में।

निराला तो काव्य का विकास छन्द के बन्धन से मुक्ति की स्थिति में मानते हैं, जबकि अन्य लोग इसके घोर विरोधी थे। इसे रबड़ छन्द, केंचुआ छन्द तक कहा गया। किन्तु कवि इससे हतोत्साहित नहीं हुआ। निराला ने छन्दबद्ध रचनाओं का सृजन भी किया है–

एक दिन थम जायेगा रोदन
तुम्हारे प्रेम अंचल में।
लिपट स्मृति बन जायेंगी कुछ कन–
कनक सोंचे नयन–जल में।

2.3.9 भाषा

अपने विचारों के अनुसार ही निराला ने अपनी अभिव्यक्ति के लिए अपनी भाषा को सर्वत्र भावों के अनुकूल डालने का प्रयत्न किया है। उनके काव्य में विशाल शब्द समूह के दर्शन होते हैं। निराला ने अपने प्रौढ़, सशक्त एवं ओजस्वी भावों को वाणी प्रदान करने के लिए प्रायः ऐसी गुरुता, गम्भीरता एवं प्रौढ़ता से परिपूर्ण भाषा का प्रयोग किया है जिसमें संस्कृत पदावली का सर्वाधिक महत्त्व तथा संस्कृत के तत्सम शब्दों की बहुलता है।

रावण प्रहार–दुवार्र–विकल–वार–दल–बल,
मूर्छित सुग्रीवागंद–भीषण–गवाक्ष–गय–नल,
वारित सौमित्र भल्लपति–अगणित मल्ल रोध,
गार्जित प्रलयाब्धि क्षुब्ध हनुमान–केवल प्रबोध।

जहाँ निराला जन–जीवन के अनुकूल सरल भावों को अभिव्यक्त करना चाहते हैं, वहां उनकी भाषा भी सरलता एवं व्यावहारिकता से ओतप्रोत होती है। 'भिक्षुक', 'वह तोड़ती पत्थर' की भाषा इसका उदाहरण है।

जहाँ शोषकों, अत्याचारियों पर व्यंग्य बाणों की वर्षा की है वहाँ उनकी भाषा में अपेक्षाकृत तीखापन, कटुता के अधिक दर्शन होते हैं। कुकुरमुत्ता की भाषा इसका उदाहरण है।

अबे सुन बे गुलाब
भूल मत, गर पाई खुशबू, रंगो–अब
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट
डाल पर इतरा रहा कैपीटलिस्ट।

निराला ने सर्वत्र भावानुकूल भाषा का प्रयोग किया है। अतः निराला ने स्वर, ध्वनि, नाद एवं भाव के अनुकूल सर्वथा शब्द योजना की है।

इन्होंने, फारसी, अरबी, अंग्रेजी तथा हिन्दी के मिश्रित शब्दों का एक साथ प्रयोग किया है।

2.3.10 अलंकारों का प्रयोग

निराला ने अपनी अलंकार योजना द्वारा भावों, विचारों, पदार्थों एवं घटनाओं के ऐसे मनोहर, मादक एवं मार्मिक चित्र अंकित किए हैं जो अपनी सरलता एवं स्वाभाविकता के साथ–साथ गतिशीलता एवं प्रभावोपादकता में अन्य कवियों के चित्रण से अधिक महत्त्वपूर्ण जान पड़ते हैं।

(i) **शब्दालंकार :** निराला की कविता में अनुप्रास का विशेषकर छेकानुप्रास एवं कृत्यानुप्रास का प्रयोग प्रायः सर्वत्र पाया जाता है।

कम्पित उनके करुण करो में,
तारक–तारों की सी तान
बता–बता अपने अतीत का,
क्या तू भी गाती है गान।

(ii) **अर्थालंकार :** निराला ने उपमा, रूपक आदि अलंकारों का बहुत ही सफल प्रयोग किया है। उपमा अलंकार इनका सर्वाधिक प्रिय जान पड़ता है।

किसके गूढ़ मर्म में निश्चित,
शशि सा सुख ज्योत्स्ना सा गात।

पाश्चात्य प्रभाव के कारण छायावादी कवियों ने मानवीकरण, विशेषण–विपर्यय, अमूर्तीकरण आदि अलंकारों को ग्रहण किया और उनके सफल प्रयोग किए। निराला के काव्य में भी इनके प्रचुर उदाहरण मिलते हैं।

(iii) **मानवीकरण :** निराला ने प्रकृति की वस्तुओं पर चेतना का आरोप करके उनमें मानवीय भावनाओं का संस्पर्श प्राप्त किया है। 'जुही की कली', सन्धया सुन्दरी, बादल, प्रपात के प्रति, तरंगों के प्रति आदि कविताएँ इसके उदाहरण हैं–

चौंक पड़ी युवती,
चकित चितवन निज चारों ओर फेर,
हेर प्यारे को सेज पास,
नम्रमुखी हँसी, खिली
खेल रंग प्यारे संग।

2.3.11 प्रतीक योजना

छायावादी कविता की सबसे बड़ी विशेषता ही यह है कि इसमें प्रतीकों के माध्यम से ही विविध रूपों, भावों, मनोवृत्तियों, आध्यात्मिक संकेतों, प्रेम व्यापारों आदि का अद्‌भुत और मनोरम वर्णन किया गया है।

निराला ने प्रकृति के उन्मुक्त सौन्दर्य–सिन्धु से अपने सामन्य प्रतीकों का चयन करके विविध रूपों एवं भावों की अभिव्यक्ति की है।

सोती थी,
जाने कही कैसे प्रिय आगमन वह ?
नायक ने चूमे कपोल,
डोल उठी वल्लरी की जैसे लड़ हिंडोल।

यहाँ 'जुही की कली' को नवपरिणीता का प्रतीक बनाकर स्पर्श–लाज के लजाई हुई नवोढ़ा नायिका का अत्यन्त चिताकर्षक सौन्दर्य–चित्र अंकित किया है, ऐसा ही मनोरम चित्र 'वन–बेला', के प्रतीक के रूप में मिलता है।

'बादल राग' कविता में बादल को कई प्रतीकों के रूप में चुना है, 'रास्ते के फूल' कविता में मुरझाये हुए दलित कुसुम को एक अनाथ एवं असहाय व्यक्ति के प्रतीक रूप में अंकित किया है। 'कर्ण' नामक कविता में कर्ण को भी दीन एवं दलित व्यक्ति के प्रतीक के रूप में अंकित किया है। 'कुकुरमुत्ता' तो है ही प्रतीकात्मक।

2.4 निष्कर्ष

निस्सन्देह निराला ने अपनी प्रौढ़ एवं सशक्त रचनाओं द्वारा हिन्दी की स्वच्छन्द काव्य–धारा को नई गति प्रदान की है, नये मोड़ प्रस्तुत किए हैं और नई अभिव्यंजना–शैली दी है। इसी कारण निराला आधुनिक स्वच्छन्द काव्य धारा के शीर्ष स्थान पर सुशोभित हैं। इनकी काव्य साधना में आन्तरिक द्वन्द्व की स्थिति निरन्तर गतिशील रही है। निराला के साहित्य की उदात्तता के कारण ही इन्हें 'महाप्राण' कहा जाता है जो आने वाले कवियों के लिए प्रेरणास्त्रोत रहेगा।

2.5 कठिन शब्द

तिरीभूत, गौरवान्वित, दार्शनिकता, विक्षुब्धि, मृदुगति, पत्रांक, ओजस्वी, समादृत, ऊर्ध्व

2.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र. 1 निराला के काव्य सौन्दर्य की प्रमुख विशेषताएं लिखिए।

_____

_____

_____

प्र. 2 निराला के काव्य में व्यक्त प्रकृति चित्रण को स्पष्ट करें।

_____

_____

_____

प्र. 3 निराला के काव्य में रहस्यवाद की भावना पर विचार करें।

_____

_____

_____

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. हिन्दी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि–द्वारिका प्रसाद सक्सेना।
2. निराला–इन्द्रनाथ मदान।
3. आत्महन्ता आस्था निराला–डॉ. दूधनाथ सिंह।
4. कविता के नए प्रतिमान–नामवर सिंह।

_____

निर्धारित कविताओं की मूल संवेदना

(क) वह तोड़ती पत्थर

(ख) भिक्षुक

(ग) कुकुरमुत्ता

3.0 रूपरेखा

3.1 उद्देश्य

3.2 प्रस्तावना

3.3 निर्धारित कविताओं की मूल संवेदना

3.4 निष्कर्ष

3.5 कठिन शब्द

3.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

3.1 उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ में 'वह तोड़ती पत्थर', 'भिक्षुक' तथा 'कुकुरमुत्ता' आदि निर्धारित कविताओं की मूल संवेदना पर विचार किया गया है।

3.2 प्रस्तावना

निराला का काव्य तत्कालीन परिस्थितियों से मुठभेड़ करता नवनिर्माण का संदेश देता है। मानवतावाद इनका मुख्य स्वर है। इन्होंने मनुष्यता पर विश्वास नहीं खोया, कविता को वैयक्तिकता या दर्शन की भूमिका

पर ले जाकर आत्मविच्छेद नहीं किया। इनकी काव्य साधना में आन्तरिक द्वन्द्व की स्थिति निरन्तर गतिशील रही है।

3.3 निर्धारित कविताओं की मूल संवेदना :

(क) वह तोड़ती पत्थर

(ख) भिक्षुक

(ग) कुकुरमुत्ता

संवेदना शब्द वेदना शब्द में 'सम्' उपसर्ग लगाने से बना है। इसका सामान्य अर्थ दुःख या पीड़ा है। किसी दूसरे की वेदना, शोक, दुख, कष्ट या हानि को देखकर मन में उत्पन्न वेदना, दुख या सहानुभूति को संवेदना कहते हैं। भिन्न–भिन्न विद्वानों ने 'संवेदना' शब्द को परिभाषित किया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार : ''संवेदना का अर्थ सुख–दुखात्मक अनुभूति ही है, उसमें भी दुखानूभूति से इसका गहरा संबंध है..... संवेदना शब्द अपने वास्तविक या अवास्तविक दुख पर कष्टानुभव के अर्थ में आया है। मतलब यह कि किसी स्थिति को लेकर दुख का अनुभव करना ही संवेदना है''।

मुक्तिबोध के अनुसार : ''मानसिक प्रतिक्रिया में संवेदना अन्तर्भूत है, किन्तु उसमें दृष्टि का दृष्टिकोण भी अन्तर्भूत है''।

मूल संवेदना से तात्पर्य किसी कविता की विषय वस्तु और उसके उद्देश्य से होता है। किसी कविता की मुख्य विषय वस्तु क्या है ? वह किस मुद्दे को उठा रही है, उसका उद्देश्य क्या है ? कवि कविता के माध्यम से क्या कहना चाह रहा है, क्या संदेश देना चाहता है ? यह सब बातें उस कविता की मूल संवेदना कहलाती हैं। मूल संवेदना कविता की संपूर्ण विषय वस्तु को सारगर्भित करती है और उसके सार को समझाती है कि कवि कविता के माध्यम से क्या बताना चाहता है।

3.3.1 (क) 'वह तोड़ती पत्थर' कविता की मूल संवेदना :

कवि की संवेदना की पहचान, उसकी ईमानदारी, गैर–ईमानदारी की पकड़ केवल शब्दों की तत्सम–तद्भव प्रकृति के अनुशीलन से नहीं की जा सकती। केवल तद्भव और देशज शब्दों का प्रयोग काव्य में जन–सामान्य की प्रतिष्ठा तब तक नहीं कर सकता, जब तक उन शब्दों में कवि की संवेदना ने अपनी ललक, संसक्ति न भर दी हो। अकिंचन, उपेक्षित को स्थान देने वाली रचना में रचनाकार के संस्कार–शील, तत्सम शब्द–प्रयोग के कारण उस रचना की वस्तुनिष्ठता और साधारण के प्रति कवि संवेदना की प्रामाणिकता में संदेह संगत नहीं प्रतीत होता। बहुत संभव है कि संवेदनशील रचनाकार के उस विशिष्ट प्रयोग में रचनात्मकता का आग्रह हो तथा आभिजात्य के कुछ–कुछ निकट रहने वाली वह शब्दावली अकिंचनता के विरोध में आकर संवेदना की तीव्रता को और भी अधिक उजागर करें।

स्नेह–स्वप्न–मग्न, अमल–कोमलतनु–तरूणी जुही की कली के चित्रांकन के साथ निराला काव्य–क्षेत्र में प्रवेश करते हैं और कवि की परिवेश के प्रति उन्मुक्त दृष्टि उसे इलाहाबाद के पथ पर पत्थर तोड़ने वाली युवती मज़दूरन के ऊपर कुछ सोचने को विवश कर देती है। क्लासिकल काव्य का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करने वाले निराला जन–साधारण से जुड़कर बड़े हल्के रंगों में पत्थर तोड़ती युवती का चित्र निर्मित करते हैं। इस कविता की मूल विशेषता उसमें निहित विपरीत भाव है, जिसे भाषिक संरचना रूपायित करती है। यह विपरीत भाव विपन्नता और सम्पन्नता को लेकर तो है ही, पर कविता की भाव–गंभीरता पत्थर तोड़ती मज़दूरिनी के भरे यौवन और उसके प्रति स्वयं उसकी तटस्थता जो वस्तुतः उसकी दीन स्थिति की विवशता का प्रतिफलन है में निहित है। वैषम्य की व्यंजना कवि आरम्भ से ही करता है :–

''नहीं छायादार
पेड़ वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार,
श्याम तन भर बंधा यौवन
नत नयन, प्रिय कर्म रत मन
गुरु हथौडा हाथ,
करती बार–बार प्रहार
सामने तरु मालिका अट्टालिका, प्राकार''।

'वह तोड़ती पत्थर' कविता हिन्दी काव्य जगत के मूर्धन्य कवि सूर्यकान्त त्रिपाठी की सन् 1935 ई. में लिखी गई एक प्रगतिवादी कविता है। यद्यपि निराला जी छायावाद के प्रतिनिधि कवि थे तथापि उन्होंने छायावाद की रोमानियत से बाहर निकल कर यथार्थ को देखा और युगानुरूप प्रगतिवादी रचनाएं करनी प्रारम्भ कर दी। निर्धन, दुःखी, शोषित मजदूर प्रगतिवादी काव्य के मेरुदंड हैं। शोषित और सर्वहारा वर्ग का यथार्थ चित्रण ही प्रगतिवादी काव्य की मूल प्रवृत्ति रही है।

'वह तोड़ती पत्थर' कविता भी इसी तरह की कविता है। इसमें निराला ने इलाहाबाद के पथ पर भरी दोपहरी में पत्थर तोड़ने वाली मजदूरिनी का यथार्थ चित्रण किया है। वह चित्रण अत्यंत मर्मस्पर्शी है। वह चिलचिलाती धूप में बैठी अपने हथौड़े से पत्थर पर प्रहार कर रही है। जिस धूप में कोई घर से बाहर नहीं निकलना चाहता उसी धूप में वह हथौड़े से बार–बार प्रहार करके पत्थर तोड़ रही है। वहां किसी प्रकार की कोई छाया नहीं है। और न ही कोई छायादार वृक्ष है जहां थोड़ी देर बैठकर वह आराम कर ले। ऐसे वातावरण में वह बिना किसी से कुछ बोले अपने कर्म में तत्पर है। वह कितनी विवश है कि उसे जीवन में किसी की ओर आंख उठाकर देखने का भी अधिकार नहीं है। उसकी दृष्टि में मार खाकर भी न रो सकने वाली विवशता है। फिर भी वह अपनी मूक भाषा में सब कुछ कह डालती है। जिसे कोई भी व्यक्ति सुन और समझ नहीं पाता है। सर्वहारा वर्ग की यही नियति है। वह दिन रात अथक परिश्रम तो करता है किन्तु उसे अपमान और उपेक्षा के अतिरिक्त और कुछ नहीं मिलता।

निराला की यह कविता पूंजीवादी अर्थव्यवस्था पर एक करारी चोट है। कवि ने व्यंग्य किया है कि कहीं बड़ी–बड़ी हवेलियां खाली पड़ी हैं और किसी को छाया भी नसीब नहीं। इस तरह की विरोधी स्थितियों पर इस कविता में बड़ा तीखा व्यंग्य किया गया है जो सभी को झकझोर कर रख देता है और इस सामाजिक असमान व्यवस्था के प्रति जन–साधारण में घृणा उत्पन्न करने पर विवश कर देता है।

3.3.2(ख) 'भिक्षुक' कविता की मूल संवेदना

भिक्षुक कविता में कवि ने एक भिखारी के अंतर्मन की दशा का वर्णन किया है। यहां भूख जैसी सामान्य आवश्यकता के लिए उसे पश्चाताप करना पड़ता है और दर–दर भटकना पड़ता है। यह सब स्थिति देखकर कवि का हृदय द्रवित हो जाता है। इस कविता में निराला ने भिखारियों की विवशता का चित्रण कर मानवीय संवेदना रखने का भाव व्यक्त किया है। कवि वर्णन करता है कि भिक्षुक जब भूख से व्याकुल हो जाता है और प्यास से उसके होंठ सूखने लगते हैं, तब उसकी स्थिति बड़ी दयनीय बन जाती है।

वह आता
दो टूक कलेजे के करता पश्ताता पथ पर आता
पेट–पीठ दोनों मिलकर हैं एक
चल रहा लकुटिया टेक।

कवि वर्णन करता है कि जब भिक्षुक आता दिखाई देता है, तो उसकी दयनीय दशा देखकर हृदय के टुकड़े होने लगते हैं। वह स्वयं भी अपनी करुणाजनक स्थिति से सभी को वेदना से भर देता है। कवि द्वारा यहां एक विवश, बेसहारा, लाचार भिखारी के आगमन का वर्णन किया गया है। भिखारी अपना आत्मसम्मान त्याग कर पश्चाताप करता पथ पर आता है अर्थात वह नहीं चाहता कि वह किसी के सामने हाथ फैलाए लेकिन वह भूख के कारण विवश है।

यहाँ भिखारी की दयनीय अवस्था का अत्यंत मार्मिक चित्रण किया है। उसने कई दिनों से भोजन नहीं किया है जिसके कारण पेट और पीठ मिलकर एक हो गए हैं। वह लाठी के सहारे चलता है। बस मुट्ठी भर दाने के लिए वह निकला है जिससे उसकी भूख मिट जाए। वह फटी–पुरानी झोली फैलाता है।

भिखारी को अपना स्वाभिमान त्यागना पड़ता है, जिससे उसके हृदय के दो टुकड़े हो गए हैं। वह अपने भाग्य को कोसता हुआ पथ पर आ रहा है। उसके साथ दो बच्चे भी हैं जो हमेशा अपना हाथ फैलाए रखते हैं। वह बाएं हाथ से अपना पेट मलते हैं और दाएं से किसी की करुण दृष्टि को तरसते हैं कि कोई इस दृश्य को देखकर उन पर दया कर दे।

''साथ दो बच्चे भी हैं सदा हाथ फैलाए
बाएं से वे मलते हुए पेट को चलते,

और दाहिना दया–दृष्टि पाने की ओर बढ़ाए।
भूख से सूख ओंठ जब जाते
दाता–भाग्य–विधाता से क्या पाते ?
घूंट आंसुओं के पीकर रह जाते।''

कवि कहता है कि जब उनके होंठ भूख के कारण सूख जाते हैं तो वे दाता यानी जो मनुष्य देने वाले हैं, भाग्य विधाता यानी ईश्वर से कुछ भी नहीं पाते हैं, बल्कि केवल आंसुओं के घूंट पीकर रह जाते हैं।

उनकी इतनी दयनीय स्थिति है कि किसी के द्वारा फेंके गए अवशिष्ट भोजन को वे चाट रहे हैं, भाव यह है कि सड़क पर पड़ी जूठी पत्तलों पर बचा–खुचा थोड़ा–सा भोजन चाटकर वे अपनी भूख मिटाने का प्रयत्न कर रहे हैं और उससे भी दर्दनाक स्थिति यह है कि उस भोजन को भी छीनने के लिए कुत्ते अडिग हैं।

''चाट रहे जूठी पत्तल वे सभी सड़क पर खड़े हुए,
और झपट लेने को उनसे कुत्ते भी हैं अड़े हुए।''

कवि स्पष्ट करना चाहता है कि भिक्षुक की दशा पशुओं से भी हीन है। भिक्षुक के प्रति सांत्वना प्रकट करते हुए कविता की अन्तिम पंक्तियों में निराला कहते हैं कि ठहरो मेरे हृदय में जो भी अमृत है मैं इससे तुम्हें सींच दूंगा। मैं तुम्हारी सहायता करूंगा, परन्तु क्या तुम अभिमन्यु जैसे बन पाओगे अर्थात् जो साहस अभिमन्यु ने परिस्थितियों से उभरने के लिए दिखाया था। वह साहस तुम में भी दिखना चाहिए। तुम्हारे जो भी दुख हैं मैं अपने हृदय में खींच लूंगा अर्थात् जो ये भीख मांगने की प्रथा छोड़ कर तुम्हें भी अपने पैरों पर खड़े होने की कोशिश करनी होगी। यह सत्य है कि निराला ने आजीवन गरीबों–दीन–दुखियों, शोषितों की सहायता की। यहां पर कवि ने भिक्षुक को भी अभिमन्यु की तरह संघर्ष करने की प्रेरणा दी है। तात्पर्य यह है कि कवि भिक्षुक की दीन–हीन दशा को जन–जन तक पहुंचाने का प्रयास करता है तथा लोगों के मन में उसके प्रति सहानुभूति एवं करूणा के भाव उत्पन्न करना चाहते हैं।

3.3.3(ग) कुकुरमुत्ता कविता की मूल संवेदना

'कुकुरमुत्ता' स्वतंत्रता पूर्व सन् 1941 में लिखी निराला की बहुचर्चित, सामाजिक व्यंग्यात्मक कविता है, जिसका मूल स्वर प्रगतिवादी है। प्रगतिवादी विचारधारा ऐतिहासिक उपज है। कार्ल मार्क्स ने सामाजिक विषमताओं को एक ऐतिहासिक तथ्य माना है, जिसपर प्रगतिवादियों ने गहन चिंतन किया। 'कुकुरमुत्ता' मूलतः निराला की एक लम्बी कविता है जिसकी आधारभूमि यथार्थवादी है। कविता में द्वितीय विश्वयुद्ध के साथ पनपती हुई सामन्ती–पूंजीवादी व्यवस्था का चित्रण है।

यह कविता दो खण्डों में है–प्रथम खंड में गुलाब पर व्यंग्य करता है, द्वितीय खण्ड़ में नवाब की बेटी 'बहार' को अपनी हमजोली 'गोली' की मां ने बनाया कुकुरमुत्ते का कबाब बहुत पसंद आता है। इस कविता में कुकुरमुत्ता–श्रमिक, सर्वहारा, शोषित वर्ग का प्रतीक है या प्रतिनिधि है और गुलाब सामंती, पूंजीपति, शोषक वर्ग का प्रतीक है।

'कुकुरमुत्ता' निराला की सामाजिक चेतना, प्रगतिवादी तथा प्रयोगशील प्रवृत्ति को निरूपित करने वाली कविता है। कवि ने इस कविता में अपने व्यंग्य का निशाना किसी एक व्यक्ति या वर्ग को नहीं बनाया है बल्कि कभी वे पूंजीपतियों पर व्यंग्य करते हैं, तो कभी थोथे समाजवादियों पर जो व्यर्थ की बात करते हैं। यही नहीं उन्होंने अपने समकालीन साहित्यकारों पर भी व्यंग्य किया है। इस कविता में निराला ने भारतीय एवं पश्चिम संस्कृति के टकराव का चित्रण भी किया है।

कविता की शुरुआत ही–''एक थे नवाब'' इन दो शब्दों की पंक्ति से होती है। कवि इन शब्दों के माध्यम से सामाजिक विषमताओं को पाठक के सामने खड़ा कर देते हैं। प्राचीन काल से हमारा समाज वर्ग व्यवस्था में विभाजित है, इसका आभास भी इन दो शब्दों से होता है। निराला पर मार्क्स के विचारों का प्रभाव था। मार्क्स ने बताया है कि समाज का विकास दास प्रथा से लेकर पूंजीपतियों तक कैसे पहुंचा है। निराला ने इसी पूंजीपति वर्ग का चित्रण इस कविता में किया है और तत्कालीन समाज पर किस प्रकार अपना रौब डालकर उनका शोषण करता रहा है, यह स्पष्ट किया है। इन नवाबों तथा पूंजीपतियों को तत्कालीन सरकार (अंग्रेज) सहायता प्रदान कर रहे थे। इन नवाबों के ठाठ–बाठ के लिए कई नौकर थे। एक तरफ समाज का एक हिस्सा खाने के लिए तरस रहा है, भूखा मर रहा है, गंदगी में सड़ रहा है और एक तरफ शान–शौकत के लिए बाग–बागिया सजाए जा रहे हैं, देशी पौधों के साथ–साथ विदेशी पौधों को भी लाया जा रहा है–

''फारस से मंगाए थे गुलाब
बड़ी–बाड़ी में लगाए
देशी पौधे भी उगाए''

यह स्थिति भारतीय पूंजीपतियों की मानसिकता को उजागर करती है। कवि एक ओर आरामगाह का चित्रण करते हैं तो दूसरी तरफ हमारे सामने उस माली के गंदे घरों का चित्रण करते हैं जो दिन–रात काम करते हैं उन्हें झोंपड़ियों में रहना पड़ता है और जो दूसरों का खून–चूसते हैं वह आराम से बाग में आरामगाह पर बैठते हैं, आलीशान बंगलों में रहते हैं। इस स्थिति पर क्रोधित होकर कवि कुकुरमुत्ते के माध्यम से पूंजीपतियों के प्रतीक गुलाब को फटकार लगाता है–

''अबे, सुन बे गुलाब,
भूल मत जो पाई खुशबू, रंग–ओ–आब,

खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट
डाल पर इतरा रहा है कैपिटलिस्ट।''

इन पंक्तियों में कवि की आंतरिक संवेदना है जो इस स्थिति को समाप्त करना चाहता है। कुकुरमुत्ता नितांत उपेक्षित एवं सर्वहारा वर्ग का प्रतीक है। जिसे अपनी हीनता के बोध होने से पूंजीपति जैसे गुलाब से घृणा है। निराला ने कविता में एक जगह अत्यंत तीखे अंदाज में लिखा है–

''रोज पड़ता रहा पानी, तू हरामी खानदानी।''

यहां कवि का विद्रोही रूप सामने आता है। निराला ने जहां–जहां विषमता देखी वहां–वहां आवाज़ उठाई। निराला ने स्थिति को बदलने के लिए 'कुकुरमुत्ता' के माध्यम से जन चेतना लाने का प्रयास किया है। कुकुरमुत्ता भले ही गंदगी में उगा हो पर वह स्वाभिमानी है और सर्वहारा वर्ग के काम आने वाला है।

कविता में निराला ने पूंजीपतियों का पर्दाफाश किया है। कविता का मूल स्वर प्रगतिवादी है जिसमें शोषकों के प्रति घृणा एवं शोषितों के प्रति सहानुभूति है। वह स्वयं को कुकुरमुत्ते की भान्ति उपेक्षित व्यक्ति मानते थे इसलिए अपने आक्रोश को गालियों के रूप में भी प्रस्तुत किया है।

कुकुरमुत्ते ने विश्व की हर महत्त्वपूर्ण चीज से अपने को जोड़कर अपनी महत्ता सिद्ध की है–

''दिगंबर का तानपूरा, हसीना का सुर बहार.....
..... हो या युरोपियन''।

कवि ने समाज के उस वर्ग पर भी प्रहार किया है, जो केवल अभिजात्य वर्ग के साहित्य को ही साहित्य मानता है। वे कवि एवं आलोचकों पर कड़ा प्रहार करते हैं। वे कवियों को भी दो वर्गों में रखते हैं–एक इलियट वर्ग के कवि जो गुलाब जैसे शोषक प्रवृत्ति के हैं तथा दूसरे वर्ग के कवि जो निराला जैसे सामान्य वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाले कुकुरमुत्ते जैसे शोषित हैं। निराला समकालीन आलोचकों पर खिन्न थे। उनका यह क्षोभ यहां प्रकट हुआ है–

''कहीं का रोड़ा, कहीं का पत्थर,
टी.एस. इलियट ने जैसे दे मारा
हाथ, कहां, लिख दिया जहां सारा।''

कवि को स्वयं साहित्यिक समाज में शोषण का शिकार होना पड़ा। उनकी सन् 1916 में लिखी कविता 'जुही की कली' सरस्वती पत्रिका से अश्लील कहकर लौटा दी थी। इतना ही नहीं उनके मुक्त छन्द को केंचुआ छन्द, रबड़ छंद कहकर उपेक्षित कर दिया था।

'कुकुरमुत्ता' का सामाजिक अनुशीलन करने पर हमें तत्कालीन समाज की स्थिति का पता चलता है कि किस तरह पूंजीपति वर्ग अपने स्वार्थ हेतु श्रमिकों का शोषण करता है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि 'कुकुरमुत्ता' कविता तत्कालीन समाज की स्थिति का दहकता हुआ दस्तावेज है।

3.5 कठिन शब्द

आत्मविच्छेद, उदात्तता, अन्तर्भूत, अकिंचन, अट्टालिका, मूर्धन्य

3.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र. 1 'भिक्षुक' और 'कुकुरमुत्ता' कविता की मूल संवेदना पर विचार कीजिए।

_____

_____

_____

प्र. 2 'वह तोड़ती पत्थर' कविता के सार पर प्रकाश डालिए।

_____

_____

_____

3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. हिन्दी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि–द्वारिका प्रसाद सक्सेना।
2. निराला–इन्द्रनाथ मदान।
3. आत्महन्ता आस्था निराला–डॉ. दूधनाथ सिंह।
4. कविता के नए प्रतिमान–नामवर सिंह।

_____

कुकुरमुत्ता की प्रतीक योजना

4.0 रूपरेखा

4.1 उद्देश्य

4.2 प्रस्तावना

4.3 'कुकुरमुत्ता' की प्रतीक योजना

4.4 निष्कर्ष

4.5 कठिन शब्द

4.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

4.1 उद्देश्य

छायावादी कविता की सबसे बड़ी विशेषता है कि इसमें प्रतीकों के माध्यम से ही विविध रूपों, भावों, मनोवृत्तियों, आध्यात्मिक संकेतों, प्रेम व्यापारों आदि का अद्‌भुत एवं मनोरम वर्णन किया गया है तथा भाव, रूप एवं कर्म संबंधी सौन्दर्य के एक–से–एक अनोखे चित्र अंकित किए गए हैं। इस पाठ में निराला की कविता 'कुकुरमुत्ता' की प्रतीक योजना पर प्रकाश डाला जाएगा।

4.2 प्रस्तावना

महाप्राण निराला ने प्रकृति के उन्मुक्त सौन्दर्य–सिन्धु से अपने सामान्य प्रतीकों का चयन करके विविध रूपों एवं भावों की अभिव्यक्ति की है। निराला की अभिव्यक्ति के रूप एवं भाव–दोनों के प्रतीक विद्यमान हैं, क्योंकि जहाँ निराला किसी व्यक्ति या पदार्थ का चित्रण करने के लिए किसी प्रतीक का प्रयोग करते हैं, वहाँ अनायास ही रूप के चित्रण के साथ–साथ किसी–न–किसी भाव का चित्र भी सजीव एवं साकार हो उठता है :

जैसे 'जुही की कली' कविता में कवि ने एक सलज्ज नई वधू का रूप–चित्र अंकित करते हुए उसके भावों की भी अत्यन्त मनोरम व्यंजना की है–

सोती थी,
जाने कहो कैसे प्रिय आगमन वह ?
नायक ने चूमे कपोल,
डोल उठी वल्लरी की जैसे लड़ हिंडोल।

ऐसे ही 'कुकुरमुत्ता' में गुलाब को कवि ने शोषक एवं पूंजीपति वर्ग का प्रतीक बनाया है और कुकुरमुत्ता को श्रमिक, कृषक एवं सर्वहारा वर्ग का प्रतीक माना है।

4.3 कुकुरमुत्ता की प्रतीक योजना

'कुकुरमुत्ता' सूर्यकांत त्रिपाठी निराला जी की एक लम्बी और प्रसिद्ध कविता है। इस कविता में कवि ने पूंजीवादी सभ्यता पर कुकुरमुत्ता के माध्यम से करारा व्यंग्य किया है। यह कविता स्वतंत्रता पूर्व सन् 1941 में लिखी गई उनकी बहुचर्चित, सामाजिक और व्यंगात्मक कविता है। इस कविता का मूल स्वर प्रगतिवादी है।

इस कविता में 'गुलाब' और कुकुरमुत्ता की बातचीत है। यह दोनों ही प्रतीक रूप में हैं। गुलाब सामंती पूँजीवादी संस्कृति का प्रतीक है और कुकुरमुत्ता मजदूर, श्रमिक, सर्वहारा, शोषित वर्ग का प्रतीक है। कुकुरमुत्ता के माध्यम से निराला जन–सामान्य और मजदूरी करने वाले तथा किसानों के महत्त्व को प्रकट करते हैं। इस काव्य में प्रगतिवादी विशेषताएं हैं, परन्तु निराला का कुकुरमुत्ता बड़े ही प्रगल्भ रूप में हमारे सामने उपस्थित होता है। वह अपनी प्रशंसा और महत्त्व बड़े अशिष्ट ढंग से स्थापित करता है। अतएव वह निराला जी द्वारा प्रतिष्ठित आदर्श संस्कृति का प्रतीक नहीं हो सकता। ऐसी दशा में दोनों ही निराला के व्यंग्य के पात्र हैं। न विलासिता में पला गुलाब, न संस्कृतिहीन कुकुरमुत्ता–इनमें से कोई भी मानवता की समामान्य संस्कृति का प्रतिनिधि नहीं है। निराला इस कविता में जहाँ पूंजीवादी संस्कृति पर प्रहार करते हैं, वहां सर्वहारा वर्ग को लेकर अत्यधिक प्रचारवादी प्रवृत्ति पर भी उनका तीखा आक्षेप है।

कुकुरमुत्ता कविता दो भागों में विभक्त है। प्रथम भाग में कुकुरमुत्ता गुलाब पर व्यंग्य करता है तथा द्वितीय भाग में साम्यवादी सिद्धान्तों पर प्रहार किया गया है। भाग एक में नवाब के महल तथा उसके सुन्दर बाग का चित्रण है जिसमें फारस से मंगवाये गुलाबों की क्यारियां बनी हैं तथा सुन्दर कृत्रिम पहाड़ियां निर्मित हैं।

दूसरे भाग में बाग में गरीबों के मिट्टी के अधगड़े झोंपड़े हैं। जहां जीवन की बिडम्बनाएँ सहज ही झलक उठती हैं। इन दोनों भागों की योजना को देखकर यह भ्रम उत्पन्न होता है कि यह कविता पूँजीवाद बनाम मार्क्सवाद को केन्द्र में रखकर लिखी गई है या मार्क्सवाद तथा प्रगतिवादी संस्कारों से प्रेरित होकर।

यह भ्रम तब और विस्तृत होता है जब कुकुरमुत्ता आम कम्युनिस्टों की भाषा में गुलाब को अश्लील गालियां देता है,

''अबे, सुन बे गुलाब भूल मत जो पायी खुशबु, रंग–ओ–आब,
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट, डाल पर इतरा रहा है कैपीटलिस्ट।''

यहाँ पर गुलाब पूंजीपतियों का प्रतीक है और कुकुरमुत्ता सर्वहारा अर्थात् गरीब और शोषित वर्ग का प्रतीक है। कुकुरमुत्ता गुलाब को ताना मारते हुए कहता है। तूने पूंजीपतियों के समान दूसरों का खून चूसा है तब तुझे यह खुशबू रंग और आभा प्राप्त हुई है। न जाने कितने नौकरों एवं मालियों ने तेरी देखभाल की होगी। इतना होने के बावजूद तेरे में काँटे हैं। तेरे पास जो भी आता है उसे तुझसे कष्ट ही कष्ट मिलता है। तेरा व्यवहार तो उन पूंजीपतियों की तरह है जिनसे कभी किसी को सुख नहीं मिल सकता है। तू बड़े–बड़े लोगों, राजाओं और अमीरों का प्यारा है लेकिन तू कभी साधारण वर्ग के साथ घुल–मिल नहीं सकता अर्थात् उनका प्यारा नहीं हो सकता है। यहाँ कविता में कवि ने गुलाब के माध्यम से पूँजीपतियों के प्रति अपना आक्रोश व्यक्त किया है।

कुकुरमुत्ता नितांत उपेक्षित सर्वहारा वर्ग का प्रतीक है जिसे अपनी हीनता के बोध होने से पूँजीपति जैसे गुलाब से घृणा है। निराला ने कविता में एक जगह अत्यंत तीखे स्वर में लिखा है–

''तू हरामी खानदानी रोज पड़ता रहा पानी।''

कुकुरमुत्ता स्वाभिमानी व्यक्ति है जो सिर उठाकर खड़ा है। उसे उगाया नहीं जाता है वह तो स्वयं ही उग जाता है अर्थात् गरीब और शोषित व्यक्ति तो अपने संसाधनों पर ही जीवित हैं। वे कभी किसी का शोषण नहीं करते हैं। कुकुरमुत्ता गुलाब से कहता है तू तो बनावटी है जबकि मैं असली हूँ। कवि यह कहना चाहता है कि पूँजीवाद सामाजिक व्यवस्था की देन है। यह मानवकृत होने के कारण कृत्रिम है। पूँजीवादी व्यवस्था श्रमिकों व सर्वहारा वर्ग का शोषण कर रही है।

कुकुरमुत्ता अपनी उपयोगिता बताते हुए अपने को कई रूपों में प्रक्षेपित करता है। वह अपने को छाता बताता है, जब दो कुकुरमुत्ता मिला दिए जाएं तो शिव का डमरु बन जाता है, अगर उल्टा कर दिया जाए तो माता यशोदा की मथानी बन जाता है। कुकुरमुत्ता अपने को सर्वव्यापक बताता है। कुकुरमुत्ता के माध्यम से सर्वहारा वर्ग के आत्मसम्मान को अभिव्यक्त किया गया है–

मैं कुकुरमुत्ता हूँ, पर बेन्जाइन वैसे बने
दर्शनशास्त्र जैसे।.....

निराला ने कुकुरमुत्ता के माध्यम से प्रगतिवादियों पर भी व्यंग्य करते हुए कहा है कि बहुत लोग असंगत बातें लिखकर कहीं ईंट कहीं रोड़ा जोड़कर अपने आप को टी. एस. इलियट समझने लगते हैं। निराला

अपने साहित्यिक मित्रों से भी अत्यंत खिन्न थे। कविता में भी इस खिन्नता की अभिव्यक्ति की गई है। कवि का कहना है कि गुलाब काँटों से घिरा हुआ है जिसके कारण वह सामान्य वर्ग से कटा हुआ है। कविता में कुकुरमुत्ता शोषित होने के बावजूद स्वाभिमानी प्रतीत होता है। एक दिन नवाब की बेटी 'बहार' ने कुकुरमुत्ता की सब्जी खाई तो उसे बहुत पसंद आई। नवाब ने तुरन्त माली को कुकुरमुत्ता लाने का हुक्म दिया किन्तु माली ने कहा कि अब कुकुरमुत्ता नहीं है। यदि आप कहें तो गुलाब लेकर आऊँ। माली की बात सुनकर नवाब गुस्सा होकर बोले जहाँ गुलाब उगे थे, वहाँ कुकुरमुत्ता उगा दो। माली ने कहा–हुजूर कुकुरमुत्ता उगाया नहीं जा सकता है। उसका कोई बीज नहीं होता वह तो स्वयं उग जाता है–

''गुस्सा आया, कांपने लगे नवाब।
बोले, चल, गुलाब जहां थे, उगा,
सबके साथ हम भी चाहते हैं अब कुकुरमुत्ता।
बोला माली, फरमाएं मआफ़ खता,
कुकुरमुत्ता अब उगाया नहीं उगता।''

कुकुरमुत्ता निराला की सामाजिक चेतना एवं प्रयोगशील प्रकृति को निरूपित करने वाली कविता है। कुकुरमुत्ता में निराला ने अत्यधिक व्यंजक युग–बोधात्मक एवं सामाजिक प्रतीकों का प्रयोग किया है। कुकुरमुत्ता नाम भी प्रतीकात्मक है जो नये युग एवं क्रान्तिकारी सर्वहारा का बोध कराता है। कुकुरमुत्ता में–खाद समाज के सर्वहारा शोषित वर्ग का प्रतीक है और कैपिटलिस्ट शोषक का प्रतीक है। इन प्रतीकों के माध्यम से निराला ने सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक वैषम्य का चित्र प्रस्तुत किया है। व्यंजना यह भी है कि अब निम्न शोषित वर्ग संघर्ष के लिए भी तत्पर है। इसी वर्ग की विजय होगी, नेतृत्व इसी को संभालना है।

कविता में अनेक पुष्पों, फलों, गंध और रंगों का विवरण आया है, जो पूँजीपतियों के ऐश्वर्य का प्रतीक है। प्रकृति का मनोरम वर्णन करते हुए निराला जी मुग्ध होकर झरने, पहाड़ी तक का वर्णन अत्यंत सहजता से करते हैं। प्रकृति के समृद्ध वातावरण में कुकुरमुत्ता गंदगी में उगता है। पूँजीपतियों को खरी–खोटी सुनाते हुए कहता है–

''जब पेट में चूहे डंड पेल रहे हों''

तब गुलाब यानी पूँजी किसी काम नहीं आती। बल्कि मजदूर किसान ही काम आते हैं जो समाज में अपनी मेहनत से पहचान बनाते हैं और पूँजीपतियों का भोजन तैयार करते हैं। कुकुरमुत्ता खुद पर अभिमान करता हुआ कहता है–

''शेर भी मुझसे गधा है।''

कुकुरमुत्ता के माध्यम से जन–साधारण और सर्वहारा की अदम्य जीवनी–शक्ति और उसकी अकृत्रिम जीवन–पद्धति का वर्णन किया गया है। कवि ने पूरी निर्ममता से, बिना किसी संकोच के निम्नवर्गीय जीवन के भयावह यथार्थ को उजागर किया है।

''जगह गन्दी, रुका सड़ता हुआ पानी
मोरियों में, जिन्दगी की लत्तरानी
बिलबिलाते कीड़े, बिखरी हड्डियां।''

सर्वहारा, श्रमिकों के जीवन में उन्हें आरामगाह नसीब नहीं होती। वे जिस जगह रहते हैं वहां चारों तरफ गंदगी है। वे न पेटभर खा पाते हैं न चैन से सो पाते हैं। जैसे कुकुरमुत्ता गन्दी जगह उगता है वैसे ही मजदूर या श्रमिक भी गंदी जगह रहते हैं लेकिन अपने स्वाभिमान को ठेस नहीं पहुँचने देते। जैसे कुकुरमुत्ता अपने को बड़ा एवं गुलाब को छोटा या नीच बताता है। कवि ने माली के घर के माध्यम से सर्वहारा वर्ग के घरों का चित्रण किया है। जहां माली रहता है उस गली में गंदगी है, रहने को ईंट–झोंपड़े हैं। यहां अकेला माली ही नहीं रहता अनेक मजदूर रहते हैं। सबके घरों की यही स्थिति है। सबके परिवार इसी स्थिति में दिन काट रहे हैं।

पूँजीपति न रात को जागकर काम करते हैं और न ही दिन में फिर भी बंगलों में रहते हैं। सेहत न बिगड़े इसलिए बगीचे में घूमते हैं। यह सब शान–शौकत उन श्रमिकों के श्रम सिकरों पर टिकी है जिसका उपभोग पूंजीपति करते हैं।

इस स्थिति को बदलने के लिए निराला ने जनचेतना लाने की कोशिश की है। कुकुरमुत्ता भले ही गंदगी में उगा हो पर वह स्वाभिमानी है और सर्वहारा वर्ग के काम आने वाला है। उसे पता है कि गुलाब दूसरों के बल पर है। एक दिन पानी न दें तो सूख जाएगा–

''कली
जो चटकी अभी
सूखकर कांटा हुई होती कभी।''

शोषकों की सेवा करने में सर्वहारा वर्ग हमेशा लगा रहता है। शोषितों को किसी के सहारे की आवश्यकता नहीं, ऐसा नहीं है पर न मिले तो भी जी लेता है। यहां कवि ने शोषक और शोषितों के बीच द्वंद्व स्थापित किया है, कुकुरमुत्ता कहता है–

''तू है नकली, मैं हूँ असली
तू है बकरा, मैं हूँ कौलिक।''

कविता में निराला ने पूंजीपतियों का पर्दाफाश किया है। कविता का मूल स्वर प्रगतिवादी है जिसमें शोषकों के प्रति घृणा एवं शोषितों के प्रति सहानुभूति है। निराला अपने को कुकुरमुत्ते की भान्ति उपेक्षित व्यक्ति मानते हैं इसलिए अपने आक्रोश को गालियों के रूप में भी प्रस्तुत करते हैं।

निराला ने 'कुकुरमुत्ता' कविता में गुलाब के माध्यम से पूंजीपतियों के दोषों को उजागर किया है। पूंजीपति वर्ग के प्रतीक गुलाब से कवि कहता है कि तुझे तो सुख–सुविधा भरा जीवन मिला है, किन्तु फिर भी तू साधारण जनता के किसी काम न आ सका जब कि मैंने अपने जीवन की लड़ाई खुद लड़ी है। इस जीवन संघर्ष में मैं आत्मसम्मान से सिर ऊंचा करके खड़ा हुआ हूँ।

कवि ने प्रतीकात्मक शैली का प्रयोग किया है और कहा है कि दुनिया में श्रमिकों के कारण ही सब कार्य संभव हो पाते हैं। पूँजीपति मानवता का शोषक है जबकि श्रमिक मानव मूल्यों का पोषक है। साधारण व्यक्ति संघर्ष करके बड़ा होता है। गरीब व्यक्ति का जीवन छल कपट से परे होता है। निराला ने सर्वहारा वर्ग को महत्त्व प्राप्त करने के लिए उसे पूंजीपतियों से श्रेष्ठ बताया है।

कविता में समाज के उस वर्ग पर भी प्रहार किया है, जो केवल अभिजात्य वर्ग के साहित्य को ही साहित्य मानता है। वे कवि एवं आलोचकों पर कड़ा प्रहार करते हैं। संक्षेप में कहा जा सकता है कि 'कुकुरमुत्ता' कविता तत्कालीन समाज की स्थिति का दहकता हुआ दस्तावेज है।

4.4 निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि निराला के युगबोधात्मक एवं सामाजिक प्रतीक जीवन यथार्थ के अत्यधिक निकट हैं और जन–सामान्य इनका क्षेत्र है। निराला जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को भली भान्ति देख चुके थे। अनुभूतियों की कटुता के कारण उनके व्यंग्य प्रयोग में तीव्रता आ गई है। कुकुरमुत्ता कविता की संरचना व्यंग्य के धरातल पर हुई है। इसमें पूंजीवादी व्यवस्था पर करारा व्यंग्य किया गया है। इस प्रकार निराला ने पूंजीपतियों को अपने आक्रोश का शिकार बनाया है और सामान्य वर्ग की महत्ता का वर्णन किया है। वे कभी पूंजीपतियों पर व्यंग्य करते हैं तो कभी थोथे समाजवादियों पर। उनका व्यंग्य विविधतापूर्ण है।

सारांश यह है कि कवि निराला ने विविध प्रतीकों के द्वारा अपनी हृदयगत अनुभूतियों के बड़े ही मनोहारी चित्र अंकित किये हैं। यद्यपि कवि ने अपनी प्रतीक योजना के लिए विविध प्रकार के अलंकारों का भी उपयोग किया है, तथापि यहाँ अलंकारों का उल्लेख न करके केवल उन प्रतीकों का ही निरूपण किया गया है, जिनके माध्यम से कवि ने अपनी संपूर्ण कविता में किसी–न–किसी भाव या रूप के सौन्दर्य का चित्र अंकित किया है। संक्षेप में यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त है कि कवि की अनुभूति जितनी उत्कृष्ट एवं उदात्त है, उसकी प्रतीक–योजना भी उतनी ही चित्ताकर्षक एवं मार्मिक जान पड़ती है और अपनी इस प्रतीक–योजना के द्वारा कवि ने भावनिरूपण की पद्धति में एक युगान्तकारी परिवर्तन भी प्रस्तुत किया है। निस्सन्देह निराला

की प्रतीक–योजना उन्नत एवं उच्चकोटि की है और इन प्रतीकों के द्वारा कवि के भावों की सशक्त अभिव्यंजना हुई है।

4.5 कठिन शब्द

प्रक्षेपित, दर्शनशास्त्र, वैषम्य, उपेक्षित, प्रगल्भ

4.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र. 1 'कुकुरमुत्ता' कविता में प्रयुक्त प्रतीकों का वर्णन करें।

_____

_____

_____

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. हिन्दी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि–द्वारिका प्रसाद सक्सेना।
2. निराला–इन्द्रनाथ मदान।
3. आत्महन्ता आस्था निराला–डॉ. दूधनाथ सिंह।
4. कविता के नए प्रतिमान–नामवर सिंह।

_____

अज्ञेय का काव्य–विकास

5.0 रूपरेखा

5.1 उद्देश्य

5.2 भूमिका

5.3 काव्य–प्रतिभा का उन्मेष

5.4 अज्ञेय पर अन्य कवियों का प्रभाव

5.5 अज्ञेय का काव्य–विकास

5.6 अभ्यास हेतु प्रश्न

5.7 संदर्भ ग्रन्थ/सहायक पुस्तकें

5.1 उद्देश्य

1933 में अज्ञेय का पहला कविता संग्रह 'भग्नदूत' निकला। 1986 में अंतिम 'ऐसा कोई घर आपने देखा है' इन तिरपन वर्षों के अन्तराल में उनके चौदह संग्रह निकले। अब उनकी सब कविताएँ 'सदानीरा' शीर्षक से दो खंडों में उपलब्ध हैं। उनकी काव्य यात्रा के विभिन्न पड़ावों की जानकारी से विद्यार्थी परिचित होंगे।

5.2 भूमिका

अज्ञेय की कविता के चार चरण दिखते हैं। पहला है विद्रोह और हताशा का, दूसरा है अपने भीतर शक्ति–संचय का, तीसरा है बिना किसी आशा के आत्मदान में सार्थकता पाने का और चौथा मानवीय दायित्व–बोध के साथ–साथ भारतीय अस्मिता की पहचान का है। पहले चरण की रचनाएँ हैं 'चिन्ता' और 'इत्यलम्', दूसरे चरण में आती हैं 'हरी घास पर क्षण भर', 'बावरा अहेरी' और 'इन्द्रधनु रौंदे हुए ये', तीसरे में 'अरी ओ करुणा प्रभामय',

'आँगन के पार द्वार' और 'कितनी नावों में कितनी बार', चौथे में 'क्योंकि मैं उसे जानता हूँ', 'सागर–मुद्रा' और 'पहले में सन्नाटा बुनता हूँ' काव्य संग्रह आते हैं। इसके बाद भी अज्ञेय की कविताओं का पाँचवां चरण 'महावृक्ष की छाया में', 'नदी की बाँक पर छाया', 'ऐसा कोई घर देखा है' आदि में लक्षित है जो अस्तित्ववाद और 'ज़ेन' बौद्धधर्म की जापानी विचारधारा से प्रभावित है।

5.3 काव्य–प्रतिभा का उन्मेष

अज्ञेय जी की काव्य–प्रतिभा का उन्मेष 'भूमीरी' नचाते हुए चार वर्ष की अवस्था में ही हो गया। एक दिन भँवरी नचाकर जब वे 'नाचत है भूमि री' बोलकर ताली पीट रहे थे तभी उन्होंने चौंक कर जाना कि जो कुछ वे कह रहे हैं वास्तव में उसका अर्थ उससे अधिक है। 'आत्मनेपद' निबन्ध संग्रह में वह कहते हैं ''मेरी भूमीरी नाचती है, सो तो ठीक, लेकिन अरी, भूमि, भी तो नाचती है––नाचत है भूमि री।... इससे आगे शब्द नहीं मिले, पर उसी समय मैंने जाना कि मेरी भँवरी नहीं, भूमि भी नाचती है––सारा विश्व ब्रह्माण्ड भी नाच रहा है।'' तब उन्हें लगा कि उन्होंने शब्द–शक्ति को स्वायत्त कर लिया है, वह आविष्कारक है, स्रष्टा है।

इसके बाद चिढ़ाने के निमित्त वे तुकबन्दी बना लेते थे। लगभग ग्यारहवें वर्ष में गंगा पर एक स्तुति लिखी जो गंगा नदी को ही भेंट चढ़ गयी। यह कविता अंग्रेजी में थी। इसकी भाषा पर वह शैले, टेनीसन आदि की गहरी छाप मानते हैं। बाद में मैथिलीशरण गुप्त, मुकुटधर पाण्डेय, श्रीधर पाठक, हरिऔध आदि कवियों की रचनाओं से परिचय हुआ। हरिऔध जी की यशोदा का विलाप पढ़कर इन्होंने मालिनी छन्द में विलाप लिखा था––राधा का, प्रवत्स्यतपति का और वीर वधू का। 'आनन्दबंधु' पत्रिका में छपी एक कविता पर पिताजी के बन्धु रायबहादुर हीरालाल से पुरस्कार मिलने एवं उनके मित्र एवं सहयोगियों की समालोचनाओं से इन्हें बड़ी सहायता मिली। इन्हीं दिनों 'गीतांजलि' से प्रभावित कुछ रहस्यवादी गद्यगीत भी इन्होंने लिखे जो नष्ट हो गये। इनकी पहली कविता लाहौर में कॉलेज पत्रिका में छपी थी जो अब 'चिन्ता' में संकलित है। 'चिन्ता' काव्य संग्रह पर जयशंकर प्रसाद की रचनाओं की गहरी छाया है। इसमें गीत भी हैं और गद्य काव्य भी। ये कविताएँ भी 'भग्नदूत' की तरह बंदीवास के एकान्त में लिखी गयी थीं।

5.4 अज्ञेय पर अन्य कवियों का प्रभाव

अज्ञेय की कविता पर प्रभाकर माचवे के अनुसार चार प्रकार के प्रभाव दिखायी देते हैं–

1. अंग्रेज़ी और अमेरिकी कविता का प्रभाव।

2. बंगाली कविता का प्रभाव।

3. हिन्दी के बड़े कवियों जैसे मैथिलीशरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद आदि का प्रभाव।

4. जापानी कविता का प्रभाव।

अंग्रेज़ी के कवि ब्राउनिंग और डी. एच. लारेंस उनके प्रिय कवि हैं। अमेरिकी कवियों में वाल्ट विटमैन से लेकर टी. एस. इलियट और एज़रा पाउंड तक उन्होंने पढ़े थे। 'इत्यलम्' के आरंभ में ही फ्रेंच कवि बोदलेअर की एक कविता का उद्धरण है। कलकत्ता में रहते हुए रवीन्द्रनाथ से लेकर सुधींद्रनाथ दत्त तक की कविताएँ उन्होंने पढ़ी थीं। बुद्धदेव बसु उनके मित्र थे। संस्कृत–प्राकृत, हिन्दी की मध्ययुगीन, रीति कविता और आधुनिकों में मैथिलीशरण गुप्त, सुमित्रानन्दन पंत, माखनलाल चतुर्वेदी, रामधारी सिंह दिनकर पर उन्होंने 'स्मृति लेखा में' लिखा ही है। जापान प्रवास के बाद 'अरी ओ करुणा प्रभामय', 'महावृक्ष की छाया में' तथा 'आँगन के पार द्वार' में न केवल उन्होंने जापानी 'हाइकू' के अनुवाद किये, अपितु जापान की कई बौद्ध कथाओं से वे प्रभावित हुए।

हिन्दी में इतना बहुपठित, बहुत–सी भाषाओं का जानकार, अन्य कवियों की काव्य रचनाओं को आत्मसात् करने वाला दूसरा कवि नहीं मिलता। ज्यों–ज्यों वे देश के बाहर भ्रमण करने लगे, ज्यों–ज्यों उन्होंने अनुवाद कार्य भी अंगीकृत किया। हिन्दी से अंग्रेज़ी में अपनी कविताएँ और औरों की भी उन्होंने अनूदित कीं जिससे उनका मानस–क्षितिज व्यापक होता गया। उनकी काव्य–कला निखरती गयी। उनका शब्द–शिल्प और महीन और मनोहारी बनता गया। उनकी कविता का यह विकास–क्रम उनकी विशेषताएँ समझने के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

5.5 अज्ञेय का काव्य–विकास

अज्ञेय आरंभ में प्रेम–कविताएँ लिखते थे। 'पूछ लूँ मैं नाम तेरा' से लेकर 'फूल कचनार के/प्रतीक मेरे प्यार के' तक अनेक गीत उनकी आरंभिक कविताओं में मिलते हैं। परन्तु उन्हें इस तरह से प्रयास वाली, तुक पर आश्रित लयबद्ध रचना से इतना जुड़ाव नहीं था। धीरे–धीरे वे मुक्त छन्द की ओर व अन्तिम दिनों में 'वाचिक परम्परा' की ओर मुड़ते गये। एक ओर उनका विद्रोही स्वर जो 'भग्नदूत में' 'मैं वह धनु हूँ, जिसे साधने में प्रत्यंचा टूट गयी है' जैसी रचना लिखवा लेता था तो दूसरी ओर वे अन्तर–मंथन वाली मनोवैज्ञानिक संवेदनाओं की सूक्ष्मता को पकड़ने वाली रचनाएँ करते जाते थे। धीरे–धीरे वे मूर्त से अमूर्त की ओर जाते हुए 'मैं वहाँ हूँ' से लेकर 'ऐसा घर कहीं देखा है' जैसी रचनाएँ लिखने लगे। एक ओर उनका गद्य सामाजिक विषयों पर बौद्धिक, तर्क–संकुल, वाद–विवादात्मक, समीक्षात्मक, विचार सघन गद्य है, दूसरी ओर उनकी कविताएँ अत्यन्त तरल और शब्द से मौन की यात्रा करती हैं। 'भग्नदूत', चिन्ता' और 'इत्यलम्' काव्य संग्रहों को छायावादी प्रभाव की सीमा में देखा जा सकता है।

1. भग्नदूत

इसका प्रकाशन सन् 1933 में हुआ। 'इत्यलम्' के प्रथम खण्ड 'भग्नदूत' में उस नाम की पुस्तक की चुनी हुई कविताएँ हैं। लेखक का अनुरोध है कि ''जो कविताएँ इस चुनाव में नहीं आईं, उनका अस्तित्व नहीं है, ऐसा मान लिया जाये।'' 'भग्नदूत' कवि के किशोर मन पर पड़े किसी गम्भीर आघात् का द्योतक है। बहुत बड़े उद्देश्य की प्राप्ति को किशोर मन जितना सरल समझता है उतना सरल नहीं होता। संघर्ष के सामने आने पर वह अपने को 'भग्नदूत' मान लेता है। फिर भी कवि का धैर्य टूटता नहीं है, इसलिए एक विश्वास का भाव भी उनके मन में है। यहाँ शृंगार भावना और कर्त्तव्य का द्वन्द्व भी मिलता है। एक ओर 'नूपुर की झंकार' है 'किन्तु उस पार अंधेरे में चिताएँ हैं।' 'भग्नदूत' में अभिव्यक्ति का

स्वरूप लगभग छायावादी है। अनुभूति में तो रोमानीपन है ही, भाषा में बनावट अधिक है। कविताओं में 'तुक' का आग्रह अधिक है।

2. चिन्ता

इस काव्य–संकलन का प्रकाशन सन् 1942 में हुआ। 'विश्वप्रिया' और 'एकायन' दो खण्डों में नर–नारी के बीच आकर्षण के चिरन्तन संघर्ष का निरूपण है ''इसमें अज्ञेय पुरुष और स्त्री के परस्पर यौन–सम्बन्ध को पति और पत्नी के सामाजिक सम्बन्ध तक सीमित न कर चिरंतन पुरुष और चिरंतन नारी में 'गतिशील' सम्बन्ध को स्वीकार करने के पक्ष में है।'' चिन्ता का मूल विषय लारेंस की कविताओं तथा उपन्यास कृतियों से प्रभावित है।

'विश्वप्रिया' खण्ड में अज्ञेय का 'पुरुष' असामान्य तत्त्वों से निर्मित हुआ है 'एकायन' खण्ड में नारी का स्वरूप अंकित किया गया है। इसकी कथा गद्य–पद्यमय है। पुरुष पहले नारी के सौन्दर्य से आकृष्ट होकर सोचता है कि क्या इसका हृदय भी है या सिर्फ रूप ही रूप है। निकट आने पर पता चलता है कि जिसे वह मात्र रूप समझ बैठा था, उसका हृदय है। तब उसका अहं गलकर बह जाता है और उसे 'विश्वप्रिया' मिलती है। 'एकायन' खण्ड में नारी पुरुष को अपना स्वरूप बताती हुई कहती है कि वह सिर्फ रूप नहीं है, उसमें उत्ताप है, दीप्ति है।

3. इत्यलम्

इसमें 'भग्नदूत' की चुनी हुई कविताओं के अतिरिक्त शेष चार भागों में 'बन्दी–स्वप्न', 'हिय हारिल', 'वंचना के दुर्ग', 'मिट्टी की ईहा' शीर्षक के अन्तर्गत समय–समय पर विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित होने वाली कविताएँ संगृहीत हैं। इसे अज्ञेय का प्रथम समस्त फुटकर कविताओं का संग्रह मान सकते हैं। 'बंदी–स्वप्न' खण्ड में बंदी कवि की आत्मा का रुदन और हाहाकार व्यक्त हुआ है किन्तु इसका एक दूसरा छोर भी मिलता है जहाँ वह घृणा का गान गाता है।

'हिय हारिल' खण्ड में कवि ने सर्वप्रथम अपने विशिष्ट 'रहस्यवाद' का परिचय दिया है। वह नया इसलिए है कि वह ईश्वर की ओर उन्मुख नहीं है। 'कीर' कविता में अकेले साधक की तरह बढ़ने का भाव व्यक्ति हुआ है। 'सूर्यास्त' और 'अन्तिम आलोक' प्रकृतिपरक कविताएँ हैं।

'वंचना के दुर्ग' खण्ड में कवि की यौन कुंठाओं का प्रभाव अत्यन्त ही घनीभूत रूप से प्रकृति पर पड़ता प्रतीत होता है। जीवन के कटु यथार्थ ने कवि को यह अनुभव करने के लिए विवश कर दिया है कि ''चाँदनी सित वंचना है। सत्य तो टुंडे, नग्न, बुच्चे दई मारे पड़े हैं।

'मिट्टी की ईहा' खण्ड में कवि की चेतना उसके शीर्षक के अनुरूप ही गूढ़ भाव ग्रहण कर लेती है। कुंठा और घुटन यहाँ भी कवि के व्यक्तित्व का अंग हैं तथा अनास्था और अविश्वास भी परन्तु अब वह अपनी बात स्पष्टतः नहीं कह कर सूत्रों में व्यक्त करता है।

समग्र रूप से देखने पर 'इत्यलम्' में अहं और कुंठा, बौद्धिकता, शंका, नियति एवं लक्षणवादी दर्शन से युक्त भावनाएँ मिलती हैं।

4. हरी घास पर क्षण भर

यह कविता–संकलन सन् 1949 में प्रकाश में आया। इस संग्रह का अज्ञेय के काव्य–जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान है। वस्तुतः यहीं से वे हिन्दी–संसार में नये काव्य–प्रवर्त्तक के रूप में विशेष रूप से जमें। उनकी कला पहले की अपेक्षा काफी निखर कर सामने आयी। 'हरी घास पर क्षण भर', 'कलगी बाजरे की', 'नदी के द्वीप' इस संग्रह की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रचनाएँ हैं। कवि यहाँ घिसी–घिसाई अलंकार–योजना का कायल नहीं रहा। कवि के बिम्ब एवं प्रतीकों में नयी ताजगी आ गई है। हरी घास स्वयं मुक्त जीवन के आमंत्रण की प्रतीक है। प्रस्तुत संग्रह में अज्ञेय की विचारगत भूमि में एक स्पष्ट फैलाव आ गया है। ऐसा लगता है कि जैसे उनका व्यक्तित्व अहं की घुटन और कुंठा भरे वातावरण से निकलना चाहता है। वस्तुतः ऐसा हो नहीं पाता और पुनः हमें अपने अस्तित्व के संकट से प्रताड़ित और शंकाकुल कवि के अहं की वकालत करने वाले स्वर ही सुनाई पड़ते हैं। इतना अवश्य है कि यहाँ बौद्धिकता की मात्रा अवश्य कम हो गयी है और उसका स्थान एक सहज गीतात्मकता ने ले लिया है, फलतः प्रकृति और प्रणय तथा कतिपय अन्य विषयों से सम्बन्धित कुछ रचनाएँ विशेष सुन्दर बन पड़ी हैं।

'हरी घास पर क्षण भर' संग्रह तक आते–आते अज्ञेय में विकसित व्यक्तिमूलक यथार्थ की ओर उन्मुखता प्रबल होने लगी थी। उसका स्वाभाविक परिणाम दोनों तरफ रहा है। एक ओर तो उनकी कविता का बाह्य और आभ्यंतर छायावादी पुट से पूर्णतः मुक्त हो सका दूसरी ओर उनकी संवेदनाएँ अधिकाधिक मानव केन्द्रित और यथार्थ हो पाई। इसके फलस्वरूप आधुनिक सभ्यता और नगर–जीवन की घुटन और विषम सामाजिक परिस्थितियों की वर्जनाओं के प्रति कवि का हृदय पूर्वाधिक सजग हुआ। कवि ने उनके बीच संत्रस्त होकर तड़पने वाले व्यक्ति मानव को पहचान लिया।

उभरे व्यक्ति–बोध और मानव के विवेक की क्षमता पर आस्थापूर्ण विश्वास रखने के कारण समाज के बीच––सामाजिक जीवन के बीच––खड़े होने पर भी उसकी कुंठाग्रस्त और वर्जनात्मक परिस्थितियाँ के साथ बेफिक्र प्रवाहित होना वे पसन्द नहीं करते। वर्जनारहित, कुंठामुक्त इकाई के समर्थक कवि इसे स्वीकार नहीं कर सकते हैं। अतः उनकी दृढ़ धारणा है कि 'हम नदी के द्वीप हैं/हम नहीं कहते कि हम को छोड़कर स्रोतस्विनी बह जाये।'

5. बावरा अहेरी

इस संग्रह में कवि की 1950 से 1953 तक की कविताएँ संकलित हैं। इसका प्रकाशन सन् 1954 में हुआ। प्रणय और प्रकृति यहाँ भी मुख्य विषय हैं। प्रणय–सम्बन्धी कविताओं में या तो आत्मनिवेदन है या फिर प्रेयसी के रूप का नयी दृष्टि से युक्त अंकन। प्रकृति–सम्बन्धी कविताओं में कवि अधिक सफल है और प्रकृति के रम्य चित्र उपस्थित हैं। यहाँ संवेदना का विकास हुआ है।

इस काव्य संग्रह में भी प्रेमानुभूति, प्रकृति–सम्बन्धी एवं व्यंग्यात्मक रचनाएँ हैं किन्तु यहाँ कवि की कला में निखार उत्पन्न हो गया है। अनुभूति में एक नवीन आत्म–केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति बढ़ने लगी है। कवि 'मौन' के समीप आता जा रहा है क्योंकि वह अनुभूति को अभिव्यक्ति के द्वारा हलका नहीं होने देना चाहता। 'आज तुम शब्द न दो', 'बावरा अहेरी', 'नखशिख', 'देहवल्ली', 'वहाँ रात', 'चाँदनी जी लो' जैसी अनेक प्रभावशाली कविताएँ इस संग्रह में हैं। 'शोषक भैया' में कवि का उद्धत विद्रोही एक नवीन रूप में उपस्थित हुआ है।

कवि में एक नवीन आस्था का उदय हो रहा है। 'यह दीप अकेला' में कवि अपने इस एकान्त विश्वास को प्रकट करता है कि यह दीप अकेला ही गर्व भरा जलता रहेगा। 'कांगड़े की छोरियाँ' लोक गीत की धुन पर एक सफल प्रयोग है। 'झरने के लिए' और 'विज्ञप्ति' कविताओं में एक जीवन–दर्शन प्रस्तुत किया गया है। इस काव्य–संग्रह की अधिकांश कविताएँ मार्मिक एवं प्रभावशाली हैं।

6. इन्द्रधनु रौंदे हुए ये

सन् 1957 में प्रकाशित कुल 58 कविताओं वाले इस काव्य–संग्रह में अज्ञेय के संवेदना एवं शिल्प सम्बन्धी प्रयोगों की छवि परिपक्व रूप में मिलती है। इस दौर में रचना–प्रक्रिया से सम्बन्धित कविताएँ जैसे जितना 'तुम्हारा सच है', 'सर्जन के क्षण', 'मुझे तीन दो शब्द' की बानगी देखते ही बनती है। यहाँ प्रकृति को बिम्ब और अप्रस्तुत योजना के रूप में 'मरु और खेत' 'वैशाख की आँधी', 'दूर्वाचल', 'बर्फ की झील', 'सागर तट की सीपियाँ' में बेहतर ढंग से समझा जा सकता है।

इस संग्रह में ऐतिहासिक चेतना सम्बन्धी कविताएँ––'इतिहास का न्याय' और 'इतिहास की हवा' संकलित हैं। यह बात और है कि पूर्वपरिचित विषयों के ही यहाँ सशक्त चित्र मिलते हैं। उदाहरण के लिए कवि की सामाजिक अनुभूति को अत्यन्त ही सुस्पष्ट एवं प्रभावशाली रूप में 'मैं वहाँ हूँ' कविता में देखा जा सकता है।

7. अरी ओ करुणा प्रभामय

1959 में प्रकाशित इस काव्य–संग्रह को चार खण्डों (रोपयित्री, रूप केकी, एक चीड़ का खाका और द्वारहीन द्वार) में विभाजित किया गया है। इसमें कवि प्रयोग की नयी दिशा में बढ़ता हुआ स्पष्ट रूप से दिख जाता है। 'रोपयित्री' खण्ड में वह विभिन्न प्रकार के आत्मानुभव व्यक्त करता है। नये कवि के नाम पर 'आत्मस्वीकार' किया गया है कि सत्य तो किसी और का था कवि ने उसमें सन्दर्भ जोड़ दिया है। मधुकोष किसी और ने काट कर लाया था, किन्तु कवि ने उसे अपने लिए निचोड़ लिया, इस प्रकार कवि अपने को आधुनिक मानता है।

'रूप केकी' खण्ड में अधिकांश कविताएँ प्राकृतिक रूपांकन की हैं। अधिकांश कविताएँ छोटे आकार की एवं भावाभिव्यंजित करने वाली हैं। 'मछलियाँ' और 'रश्मि बाण' जैसी प्रतीकात्मक कविताएँ इसी संग्रह में हैं। 'एक चीड़ का खाका' जापानी कविताओं का अनुवाद है, ये कविताएँ विभिन्न जापानी लेखकों की हैं। 'द्वारहीन द्वार' खण्ड में कवि का एक नवीन रहस्यवाद मुखर हुआ है। कवि अब आत्मान्वेषी अधिक हो गया है। संक्षेप में यह संग्रह कई प्रकार के नये प्रयोगों के साथ कवि की बढ़ती हुई रहस्योन्मुखता को रेखांकित करता है।

8. रूपाम्बरा

अज्ञेय में प्रकृति का गहरा भावन है, पर आग्रह नहीं है। प्रकृति काव्य में विशेष रुचि होने के कारण उन्होंने हिन्दी प्रकृति काव्य का एक अच्छा–खासा संकलन 'रूपाम्बरा' (1960) प्रकाशित किया है। भूमिका में कवि के प्रकृति सम्बन्धी दृष्टिकोण का विश्लेषण है। यहाँ निश्चय ही प्रकृति को ले कर एक आधुनिक दृष्टि का प्रतिपादन हुआ है। आधुनिक कविता में प्रकृति को देखने का ढंग ही नहीं बदला, उस के प्रति मौलिक सम्बन्ध में भी परिवर्तन घटित हुआ है। अज्ञेय ने इस संग्रह का संपादन किया है।

9. आँगन के पार द्वार

इस संकलन में अज्ञेय की सन् 1959 से 1961 तक की रचनाएँ संकलित हैं। इसका प्रकाशन सन् 1961 में हुआ। कवि की इस कृति पर 1964 में साहित्य–अकादमी का पुरस्कार मिला। 'आँगन के पार द्वार' की मुख्य काव्यावस्थाओं का आदि सांचा 'हरी घास पर क्षण भर' से निकाला जा सकता है। 'आँगन के पार द्वार' संग्रह का पहला खण्ड 'अन्तः सलिला' है। इसमें 'भीतर जागा दाता', 'बना दे चितेरे' जैसी कविताओं में मौन में सत्य की अनुभूति का चित्र है। 'चक्रांत शिला' खण्ड में सत्ताईस कविताएँ हैं। सभी का विषय लगभग एक–सा ही है। गहन आत्म–चिन्तन के फलस्वरूप कवि यहाँ प्रत्येक चित्र में तत्त्व दर्शन करने लगा है। इसमें बौद्ध दर्शन का प्रभाव भी लक्षित किया जा सकता है।

इस काव्य की सबसे महत्त्वपूर्ण रचना 'असाध्यवीणा' है। 'हरी घास पर क्षण भर' में कवि ने मौन में कहानी कहने की बात की थी। 'असाध्य वीणा' से निकले विभिन्न स्वर 'मौन' से ही निकल सकते हैं। दर्शक यह समझते हैं कि प्रियंवद (साधक) वीणा पर ही सो गया है, वस्तुतः वह सोया नहीं है, वह अपनी सत्ता को उसमें लीन कर देता है। इस प्रकार 'असाध्य वीणा' महामौन का शब्दहीन गान बन जाता है।

विद्यानिवास मिश्र का कहना है कि 'आँगन के पार द्वार' अज्ञेय के कृतित्व का चरम उत्कर्ष नहीं है, पर चरम उत्कर्ष की सबसे ज्वलन्त सम्भावना तो जरूर ही है। आरम्भ से लेकर यदि इस काव्य–संग्रह तक की कविताओं का मूल्यांकन किया जाये तो अज्ञेय की समूची काव्य–यात्रा प्रमुखतः उस आध्यात्मिक संवेदना–प्रज्ञा की तलाश से प्रेरित हुई जान पड़ती है, जिसके और मात्र जिसके सन्दर्भ में ही व्यक्तित्व और विचार, ज्ञान और भावना, आत्मा और सृष्टि की सत्ता या वास्तविकता हो सकती है।

10. सुनहले शैवाल

इस संकलन का प्रकाशन सन् 1966 में हुआ। यह एक विशिष्ट प्रकार का संकलन है। विशिष्टता रचनाओं के साथ दिये गये चित्रों (फोटोग्राफ्स) से उत्पन्न की गई है। इसमें चित्रों सहित 44 कविताएँ संकलित हैं जो 'वंचना के दुर्ग', 'मिट्टी की ईहा', 'चिन्ता', 'हिय–हारिल', 'हरी घास पर क्षण भर', 'बावरा अहेरी', 'इन्द्रधनु रौंदे हुए ये', 'अरी ओ करुणा प्रभामय', 'आँगन के पार द्वार' और 'कितनी नावों मे कितनी बार' काव्य–संकलनों से चुनकर ली गई हैं। इस

संकलन की 'नृत्य–स्मृति' 'निवेदन के द्वीप', और 'भोरः आशीः' कविताएँ नयी हैं। चित्रों के कारण सम्भवतः यह संकलन पाठकों के लिए अधिक ग्राह्य हो गया है।

11. पूर्वा

1965 में प्रकाशित 'पूर्वा' अज्ञेय के तीन पूर्व प्रकाशित कविता संग्रहों –– 'भग्नदूत', 'इत्यलम्' और 'हरी घास पर क्षण भर' का समग्र प्रयास है।

12. कितनी नावों में कितनी बार

इस संग्रह में 1962 से लेकर 1966 तक की कविताएँ सम्मिलित की गयी हैं। 'कितनी नावों में कितनी बार' में अज्ञेय ने मनुष्य के प्रति अपनी गहरी संवेदना का एक नया संस्कार दिया है। इस संग्रह में एक युद्ध–सम्बन्धी कविता भी मिलती है, जो पिछले संकलनों में नहीं है। 'कितनी नावों में कितनी बार' की यात्राएँ सिर्फ बाहरी यात्राएँ नहीं हैं। उनका सम्बन्ध कवि की अन्तर्यात्रा से भी रहा है। इस संग्रह के लिए अज्ञेय को ज्ञानपीठ से सम्मानित किया गया है।

13. क्योंकि मैं उसे जानता हूँ

इस संकलन में 1965 से 1968 तक की 54 कविताएँ संकलित हैं। इस संकलन की सात कविताओं को छोड़कर शेष कविताओं को दो उपशीर्षकों में बाँटा गया है –'गूँजेगी आवाज' और 'प्रार्थना का एक प्रकार'। इस संकलन की कविताओं को कई वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। सत्यबोध की कविताएँ, सामाजिक चेतना को अभिव्यक्ति देने वाली कविताएँ, प्रणयानुभूति से सम्बन्धित कविताएँ तथा आत्म–परिचयात्मक कविताएँ। कवि ने यहाँ अपने तेवर बदल दिये हैं। उन्होंने अपने अनुभवों को 'मैं उसे जानता हूँ' कहकर अधिक विश्वसनीयता और प्रौढ़ता की छाप लगायी है।

'क्योंकि मैं उसे जानता हूँ' के 'गूँजेगी आवाज' खण्ड की कविताएँ देश की वर्तमान परिस्थिति से जुड़ी हुई हैं। 'आजादी के बीस बरस' के अतिरिक्त 'अहं राष्ट्री संगमनी जनानाम्', 'क्योंकि मैं', 'जनपथ राजपथ', 'केले का पेड़', 'देश की कहानी : दादी की ज़बानी' जैसी कविताएँ तीखे व्यंजन की मुद्रा और मुहावरे में चलती हैं, जो अज्ञेय के यहाँ आलोचना और अस्वीकृति का सबसे कठोर रूप है, और उन के रचना–विधान में बाद में विकसित हुआ है। इन कविताओं का मिज़ाज पूरी तरह देशी है। व्यंग्य और सहानुभूति की मिलावट में 'केले का पेड़' इस वर्ग की सबसे सशक्त रचना है। कविता व्यंग्य से आरम्भ होती है और सहानुभूति में पूरी। तत्सम की उदात्तता तद्भव की बराबरी और देशी आत्मीयता में बदल गयी है। यहाँ आकर प्रेम की कविता जैसे 'प्रार्थना का एक प्रकार' बन गयी है।

14. सागर–मुद्रा

इस संकलन में अज्ञेय की सन् 1967 से 1969 तक की 78 कविताएँ संकलित की गई हैं। इस पुस्तक के उत्तर–खण्ड में 'देलोस से एक नाव' उपशीर्षक के अन्तर्गत सोलह कविताएँ संकलित हैं जो संवेदना और शिल्प की

दृष्टि से कवि की प्रौढ़ता को व्यंजित करती है। विषय की दृष्टि से इस संकलन की अनेक रचनाओं में काल की अवधारणा व्यक्त हुई है। कई रचनाओं में कवि की प्रेमानुभूति को वाणी मिली है तथा कवि का विशिष्ट रहस्यवाद व्यंजित हुआ है। प्रकृति के अंकन में कवि जीवनानुभव को टांकने में कुशल है। इस संग्रह की अनेक प्रकृतिपरक रचनाएँ अनुभव के किसी न किसी संदर्भ से जुड़कर विशेष अर्थगर्भित हो गई हैं। 'काल की गदा', 'बालू घड़ी', 'नदी का बहना', 'गजर', 'कालस्थितिः1', 'कालस्थितिः2' कविताओं में कवि की चेतना काल के अस्तित्व से प्रभावित होकर जीवन–मर्म ढूँढ़ने की चेष्टा करती–सी प्रतीत होती है।

'सागर–मुदा' नाम की कविता के ग्यारह खण्डों में सागर की उपस्थिति विद्यमान है। कवि ने इन कविताओं में सागर और सागर तट के माध्यम से अनेक अर्थछवियों का अंकन किया है। इन कविताओं में सागर कहीं तो ब्रह्म का, कहीं चेतना के समुद्र का, कहीं महाकाल का, कहीं विराट् आत्मा का और कहीं विशालता का प्रतीक जान पड़ता है। कवि की रहस्यवादी चेतना भी इन कविताओं के माध्यम से व्यक्त हुई है।

'देलोस से एक नाव' खण्ड की कविताएँ ग्रीक भाषा की एक पुरानी, फटी हुई पुस्तक की कविताओं का हिन्दी रूपांतरण हैं। अनुवाद स्वयं अज्ञेय ने किया है।

15. पहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ

इस संकलन में अज्ञेय की 1970 से 1973 तक की रचानाएँ संकलित हैं। इस संकलन की कविताओं को तीन उपशीर्षकों के अन्तर्गत बाँटा गया है। 'वन झरने की धार', 'खुले में खड़ा पेड़' और 'नंदा देवी'। कवि की दार्शनिकता विशेष रूप से उभरी है। कवि के भीतर का सत्यान्वेषी मन वस्तु और घटनाओं के पीछे देखने की प्रवृत्ति से सम्पन्न रहा है। इस संकलन में उनके सत्यान्वेषण की प्रवृत्ति और भी तीव्र हुई–सी प्रतीत होती है। अनेक कविताओं में अस्तित्वबोध, चेतना की विभिन्न स्थितियाँ, देश, काल, जीवन और मृत्यु के संदर्भ में कवि की अनुभूति प्रकट हुई है। इस संकलन में कवि ने 'सागर–मुद्रा' नाम की तीन कविताएँ और जोड़ दी हैं। 'खुले में खड़ा पेड़' खण्ड की अनेक कविताओं में आधुनिक मूल्यों एवं विसंगतियों पर तीक्ष्ण व्यंग्य किया गया है। 'हीरो', 'जो पुल बनायेंगे', 'बाबू ने कहा' और 'हम घूम आये शहर' कविताओं में व्यंग्य की स्थिति देखी जा सकती है।

'नंदादेवी' खण्ड में नंदादेवी का प्राकृतिक सौन्दर्य तो अभिव्यक्त हुआ ही है साथ ही इनके माध्यम से कवि ने अपनी विभिन्न प्रकार की अनुभूतियों को भी वाणी दी है।

16. महावृक्ष के नीचे

1974 से 1976 के बीच प्रवास काल में रचित कविताओं का संग्रह 'महावृक्ष के नीचे' 1980 में प्रकाशित हुआ। इस संग्रह में यूरोप में रहते हुए अज्ञेय ने अधिकांश कविताएँ रची हैं। जैसे 'होमोहाइडेल वर्गेसिस', 'सीमांत पर', 'क्लाइस्ट की समाधि पर' 'तीसरा चरण (ह्योएल्डर्लिन के प्रति)' कविताएँ इस दृष्टि से देखी जा सकती हैं। इस संग्रह की सर्वाधिक आकर्षक कविता 'नाच' है जो कवि की रचना–प्रक्रिया को समझने का महत्वपूर्ण माध्यम है।

17. नदी की बाँक पर छाया

इस संग्रह का प्रकाशन 1981 में हुआ। यह अज्ञेय की 1977 से 1981 के काल में रचित कविताओं का संग्रह है। यहाँ तक पहुँच कर कवि का झुकाव सामाजिक परिदृश्य एवं सामान्य जन की ओर अधिक होता गया है। 'भैंस की पीठ पर', 'उसके चेहरे पर इतिहास', 'उस के पैरों में बिवाइयाँ', 'परती का गीत', 'कहो राम, कबीर' कविताओं में सामान्य उपेक्षित मानव की ओर कवि संवेदनशील दिखाई देता है। 'मैंने पूछा क्या कर रही हो', 'भाषा–माध्यम', 'भाषा–पहचान' कवि–कर्म से जुड़ी कविताएँ हैं। 'इतिहास–बोध' इस संग्रह की महत्वपूर्ण कविता है।

18. ऐसा कोई घर आपने देखा है

इस संग्रह का प्रकाशन–वर्ष 1986 है। कुल 41 कविताओं वाले इस संग्रह में अज्ञेय अपनी जीवन–यात्रा के अन्तिम पड़ाव को मानो खुली आँखों से देख रहे हैं। 'कौन खोले द्वार', 'जहाँ सुख है', 'ओ साइयाँ', 'स्वयं जब बोली चिड़िया', 'प्रतीक्षा', 'देहरी पर दीया' जैसी कविताएँ रहस्यपरक सुर में बहुत कुछ कहने की कोशिश करती हैं। मिथकीय घटना और चरित्रों की अभिव्यक्ति 'गांधारी', 'रक्तबीज', 'देवासुर' कविताओं में हुई है। प्रस्तुत संग्रह में अठारह अंतरालों वाली लम्बी कविता 'आर्फेउस' विशेष बन पड़ी है जिसमें पश्चिमी मिथकीय कथा की रचनात्मक प्रस्तुति हुई है।

19. मरुथल

1995 में अज्ञेय का काव्य–संग्रह 'मरुथल' उनके देहावसान के पश्चात् आया। इस संग्रह का वैशिष्ट्य यह है कि इसमें स्वयं कवि द्वारा खींचे गए छायाचित्रों (फ़ोटोज़) को पुस्तक के दाहिने ओर रखा गया है और उस छायाचित्र की मूल आत्मा (संवेदना) के अनुरूप अज्ञेय द्वारा रचित कविता को बाईं ओर स्थान मिला है। कविता के साथ अन्य कलाओं का यह अन्तर्संयोजन 'मरुथल' को विशेष महत्व प्रदान करता है। पहाड़ और झरने, वृक्षों और बादलों के विविध 'मूड्स' को उन्होंने बड़ी ही कुशलता से पकड़ा है।

5.6 अभ्यास हेतु प्रश्न

प्र. 1 अज्ञेय में काव्य प्रतिभा का उन्मेष कैसे हुआ?

_____

_____

_____

प्र. 2 छायावाद से प्रभावित अज्ञेय के प्रारम्भिक कविता संग्रहों का विवेचन कीजिए।

_____

_____

_____

प्र. 3 नयी कविता के दौर में रचे गये अज्ञेय के कविता संग्रहों का विवेचन कीजिए।

_____

_____

_____

प्र. 4 अज्ञेय की काव्य यात्रा पर विस्तारपूर्वक प्रकाश डालिए।

_____

_____

_____

5.7 संदर्भ ग्रन्थ/सहायक पुस्तकें

1. डॉ. ओमप्रकाश अवस्थी – अज्ञेय कवि
2. डॉ. गंगाप्रसाद विमल – अज्ञेय का रचना–संसार
3. ए. अरविन्दाक्षण – अज्ञेय काव्य में प्राग्बिंब और मिथक
4. प्रभाकर माचवे – अज्ञेय
5. रमेशचन्द्र शाह – अज्ञेयः वागर्थ का वैभव
6. डॉ. रजनी बाला – अज्ञेयः एक कृति के बहाने
7. डॉ. रजनी बाला – अज्ञेयः चिन्तन और काव्य
8. राजेन्द्र प्रसाद – अज्ञेयः कवि और काव्य
9. रामस्वरूप चतुर्वेदी – अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या
10. डॉ. सूरजप्रसाद मिश्र – आधुनिक हिन्दी कविता में व्यक्तित्व अंकन

_____

अज्ञेय के काव्य में व्यक्ति और समाज

6.0 रूपरेखा

6.1 उद्देश्य

6.2 भूमिका

6.3 व्यक्ति और समाज

6.4 अभ्यास हेतु प्रश्न

6.5 संदर्भ ग्रन्थ/सहायक पुस्तकें

6.1 उद्देश्य

अज्ञेय के काव्य में व्यक्ति और समाज का द्वन्द्व और समाहार है। यह द्वन्द्व 'मैं' के स्वाभिमान का नहीं अपितु 'मैं' को बनाये रखते हुए किस प्रकार सामाजिकता को पुष्ट किया जाये, इस आधार का है। अज्ञेय को निरा व्यक्तिवादी या घोर असामाजिक कहने जो मुहिम चलाई गयी उसका निराकरण इस अध्याय में हो सकेगा। विद्यार्थी इस आलेख के माध्यम से अज्ञेय के काव्य में व्यक्ति और समाज की नयी संकल्पना और उसके औचित्य से परिचित हो सकेंगे।

6.2 भूमिका

अज्ञेय की काव्य–संवेदना में पूर्ववर्ती काव्य परम्परा से अलग लक्षणों की पहचान है। इस पहचान के परिणामस्वरूप उन्होंने 'राहों का अन्वेषण' किया है। वैयक्तिकता तक उनका काव्य सीमित नहीं वरन् उसमें स्वतन्त्रता, सामाजिक न्याय के लिए मानव–व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा और सामान्य उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए भी स्थान है। इस रूप में वह एक 'टाइप' या 'ठप्पा' बनकर अपने अस्तित्व को समाप्त नहीं करना चाहते। दूसरी और समाज से अलग भी नहीं रहना चाहते। दरअसल वह समाज 'से' नहीं वरन् समाज 'में' अलग रहने के अभिलाषी हैं।

6.3 व्यक्ति और समाज

अज्ञेय ने देखा कि राजनीतिक दल चाहे साम्यवादी हो अथवा लोकतान्त्रिक––पहला, सामाजिक समानता के नाम पर व्यक्ति को दबाता है और दूसरा, पूँजी और सुविधाओं के एक बड़े क्षेत्र पर अधिकार करता है। परिणामतः अज्ञेय में अपनी अस्मिता का बोध जागृत हुआ। दूसरी ओर, उन्होंने जनसाधारण की पीड़ा को पहचाना। साथ ही उन्हें सामाजिक आचरण की ज़िम्मेदारी का बोध है। इस दृष्टि से इन्द्रधनु रौंदे हुए ये काव्य–संग्रह की कविता 'जितना तुम्हारा सच है' विशिष्ट है, जिसमें स्पष्ट किया गया है कि यदि हम 'व्यष्टि' अपनी मर्यादा 'कर्त्तव्यों' को निभाते हुए समाज 'समष्टि' में अभिन्न मन बह सकें तो व्यष्टि–समष्टि का द्वन्द्व ही नहीं रहेगा। हमें इस सच्चाई का भान होना चाहिए कि **'तुम नहीं व्याप सकते; तुम में जो व्यापा है/उसी को निबाहो।'** व्यष्टि को समष्टि पर अधिकार या तानाशाही जमाने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए क्योंकि एक सीमा तक ही समाज को व्यक्ति आत्मसात् कर सकता है। अज्ञेय को अपनी सीमाओं, मर्यादाओं का ज्ञान है, उस पर भी यह विडम्बना है कि उन्हें आँख मूँदकर व्यक्तिवादी घोषित किया जाता रहा है जबकि वे दूसरे की अतृप्ति को पूर्ण करने के लिए 'मैं तुम्हारा प्रतिभू हूँ' बनकर स्वयं कष्ट भोगते हैं :

तुम्हारे साथ मैंने कष्ट पाया है
यातनाएँ सही हैं
किन्तु तुम्हारे साथ मैं मरा नहीं हूँ
क्योंकि तुमने तुम्हारा शेष कष्ट भोगने के लिए
मुझे चुना :
मैं अपने ही नहीं, तुम्हारे भी सलीब का वाहक हूँ

यहाँ अज्ञेय जीवन–संघर्ष से पस्त होने वाले कुछ लोगों को तृप्ति और पूर्णता प्रदान करने के लिए शपथ लेते हैं और इतना ही नहीं सम्पूर्ण युग की टूटन, विध्वंस की पीड़ा स्वयं लिये हुए हैं।

अज्ञेय व्यक्तित्व को पूर्णता तक पहुँचाते हैं क्योंकि खो देना, देना नहीं होता। जीवन में सब कुछ प्राप्त करते हुए वे समाज को अपनी सम्पूर्णता देते हैं क्योंकि सागर दीढ़–याचक सा सदैव माँगता ही रहा है और व्यष्टि 'लहर' ने उसे सब कुछ दिया है। वह समाज के थपेड़ों को सहकर भी मुदित भाव से स्वयं को सौंपते हैं क्योंकि सौंपने में ही उन्हें चरम आनन्द और उल्लास मिलता है। इस आनन्द के अतिरिक्त जीवन में उन्हें अन्य किसी चीज़ की चाह नहीं है। इस समाज में ही उन्हें लय मिलेगी या जय, फिर व्यक्तित्व की पराजय कहाँ हुई? इसीलिए उन्होंने : 'सदा बढ़–चढ़ कर दिया है–/जो सदा उन्मुक्त हाथों, मुक्त मन–देता रहा है;/अन्तहीन अकूल अथाह सागर का थपेड़ा/सदा जिसने समुद्र/छाती पर सहा है/आह! यह उल्लास, यह आनन्द, वह जाने–बहा है'।

अज्ञेय के व्यक्तित्व में सामाजिकता का आग्रह इस सीमा तक समाहित है कि वे समाज में अतृप्त, हारे हुए लोगों को पूर्ण तृप्ति भी प्रदान करते हैं और स्वयं की सिद्धि समाज को सौंपते हैं। साथ ही समाज के दलित, दमित,

पीड़ित वर्ग के प्रति अपनी संवेदना व्यक्त करते हैं। 'मैं वहाँ हूँ' कविता में परस्पर विरोधी स्थितियों को सामने रखकर श्रमरत मानव का जो मार्मिक चित्र खींचा है उसे देखते हुए उन्हें असामाजिक अथवा कोरा व्यक्तिवादी कहना कहाँ तक उचित है :

यह जो मिट्टी गोड़ता है
कोदई खाता है और गेहूँ खिलाता है
उसकी मैं साधना हूँ।
यह जो मिट्टी फोड़ता है
मड़िया में रहता और महलों को बनाता है
उसकी मैं आस्था हूँ
यह जो कज्जल–पुता खानों में उतरता है
पर चमाचम विमानों को आकाश में उड़ाता है
यह जो नंगे बदन, दम साध, पानी में धँसता है
और बाज़ार के लिए पानीदार मोती निकाल लाता है,
यह जो कलम घिसता है
चाकरी करता है, पर सरकार को चलाता है,
उसकी मैं व्यथा हूँ।
यह जो कचरा ढोता है,
यह जो झल्ली लिये फिरता है और बेघरा घूरे पर सोता है,
..... उसकी मैं कथा हूँ।

कवि द्वारा स्वयं को 'सेतु', 'प्रतिभू' कहने से उसे व्यक्तिवादी अथवा अहंवादी मानने का भ्रम होता है लेकिन यह ध्यान देने की बात है कि काव्य का 'मैं' माध्यम होता है, अभिनेय चरित्र होता है। इस तथ्य को स्वीकारने से स्पष्ट है कि अज्ञेय कोरे व्यक्तिवादी या आत्माभिव्यंजक कवि नहीं हैं। उन्हें, निरा व्यक्तिवादी या अहंवादी कहना समझदारी नहीं। खासतौर से 'इन्द्रधनु रौंदे हुए ये' काव्य–संग्रह में कवि चेतना पर सामाजिक आग्रह का दबाव इतना अधिक है कि सर्वाधिक पीड़ित मनुष्य के प्रति अपनी संवेदना के साथ पाठकीय संवेदना को भी जोड़ते हैं :

ओट खड़ी खम्भे के अंधियारे में चेहरे की मुर्दनी छिपाये
थकी उंगलियों से सूजी आँखों से रूखे बाल हटाती
लट की मैली झालर के पीछे से/बोलेगी
दया कीजिये, जेंटिलमैन....

अज्ञेय में सामाजिक बोध संवेदना से छनकर आया है, इसीलिए वे 'महानगर : रात' में अभिजात्य वर्ग के शोषण से पीड़ित मनुष्य की तकलीफ़ को पारदर्शी नज़र से देख लेते हैं। राष्ट्रीयता की तूती बजाने और अन्तर्राष्ट्रीय सौहार्द का आडम्बर दिखाने वालों को अज्ञेय 'हवाई यात्रा : ऊँची उड़ान' से सामाजिक यथार्थ के ठोस धरातल पर उतारते हैं और साथ ही महलों में रहने वालों से आग्रह करते हैं कि वे कम से कम शीशों से झांककर ही सही, पर आम आदमी की व्यथा को समझें तो सामाजिक कर्त्तव्यों का बोध उन्हें हो सकेगा :

अपने उड़न खटोले की खिड़की को खोलो
और पैर रक्खो मिट्टी पर :
खड़ा मिलेगा/वहाँ सामने तुम को
अनपेक्षित प्रतिरूप तुम्हारा
नर, जिस की अनझिप आँखों में नारायण की व्यथा भरी है!

अज्ञेय सामाजिकता की आड़ में नारेबाजी को नहीं, वास्तविकता को प्रश्रय देते हैं उन की समष्टिगत संवेदना साधारण मानव और नारायण में अन्तर नहीं करती और इस प्रकार मानवतावादी होने का परिचय देती है। इसीलिए वे नर की बातें करते हैं उस नर की, जिसकी आँखों में परिस्थितियों की वेदना और व्यथा समाहित है।

अज्ञेय ने स्वयं को अल्पसंख्यक कहा उसका अर्थ यह नहीं कि वे अपने काव्य में अभिजात्य वर्ग, जो अल्पसंख्यक है––का बखान करते हैं वरन् वैयक्तिक वैशिष्ट्य को महत्त्व देते हुए जनसाधारण की पीड़ा और सामाजिक दायित्व से बेचैन दिखाई देते हैं। इसीलिए उनके काव्य में व्यक्ति और समाज का द्वन्द्व है और कवि–कर्म से परिचित होने के कारण द्वन्द्व का समाहार भी दृष्टिगोचर होता है। अज्ञेय का व्यक्ति–मन समाज से विछिन्न नहीं। जैसे निर्वैयक्तिकता के लिए व्यक्तित्व की पहचान ज़रूरी है तभी व्यक्तित्व का विलयन किया जा सकता है अर्थात् व्यक्तित्ववान् ही निर्वैक्तिकता के ध्येय को प्राप्त कर सकता है, उसी प्रकार व्यक्तित्व सम्पन्न व्यक्ति ही समाज में अपना योग दे सकता है।

स्पष्ट है कि मानव सामाजिक प्राणी है। उसकी स्वतन्त्रता यदि उसे व्यक्तित्व प्रदान करती है तो समाज के समक्ष नीति के घेरे में भी बाँधती है और सृजन, क्योंकि दूसरों पर अभिव्यक्ति है अतः व्यक्ति (रचनाकार) का सामाजिक होना स्वयंसिद्ध है। 'अरी ओ करुणा प्रभामय' संग्रह की 'तू–मैं' शीर्षक कविता समाज के प्रति व्यक्ति के इसी उत्तरदायित्व बोध को स्पष्ट करती है :

तू फाड़–फाड़ कर छप्पर चाहे
जिसको–तिसको देता जा
मैं मोती अपने हिय के उन में भरा करूँ।
तू जहाँ कहीं जी करे
घड़े के घड़े अमृत बरसाया कर

मैं उसकी बूँद–बूँद के संचय के हित सौ–सौ बार मरूँ।
तू सुर लोकों के द्वार खोल नित नये
राह पर नन्दन वन कुसुमाता जा–
मैं बार–बार हठ करके यह, अनन्य यह मानव–लोक वरूँ।

यहाँ पर अज्ञेय द्वारा निर्दिष्ट व्यक्ति स्वर्ग लोक और नन्दन वन का प्रलोभन त्याग कर समाज हेतु धरती पर जन्म लेने की असीम लालसा बनाये हुए है जिससे उसकी सामाजिकता सिद्ध होती है।

अज्ञेय–साहित्य में व्यक्ति स्वयं को होम करके या दान करके किसी प्रशंसा का मुखापेक्षी नहीं। वह भीड़ से नहीं; एक अकेले मानव से ही कृतार्थ हो जाता है। उस मानव से जो उसे झूठे सपने से जगाकर दुस्सह सच्चाई में तपने को बाध्य करता है :

तुम्हें नहीं तो किसे और
मैं दूँ। अपने को
(जो भी मैं हूँ ?)
तुम जिसने तोड़ा है
मेरे हर झूठे सपने को।

उनका व्यक्ति समाज 'से' स्वाधीन नहीं; समाज 'में' स्वाधीन होना चाहता है। 'पूर्वा' की कविता 'कितनी शान्ति! कितनी शान्ति!' में वे एकदम स्पष्ट कर देते हैं कि इस संदर्भ में उनमें किसी प्रकार की आत्म–प्रशंसा या अहंकार का भाव नहीं है :

जानता क्या नहीं, निज में बद्ध होकर नहीं निर्वाह?
क्षुद्र नलकी में समाता है कहीं बेथाह
मुक्त जीवन की सक्रिय अभिव्यंजना का तेज–दीप्त प्रवाह!
जानता हूँ। नहीं सकुचा हूँ कभी समवाय को देने स्वयं का दान
विश्वजन की अर्चना में नहीं बाधक था कभी इस व्यष्टि का अभिमान।

यहाँ पर अज्ञेय ने अवचेतन स्तर पर छिपी उस पीड़ा का अनुभव किया है जो उन्हें उन आलोचकों से मिली जिन्होंने अज्ञेय को व्यक्तिवादी ही नहीं; घोर असामाजिक भी करार दिया। प्रश्न यह है क्या गुलाम भारत की पीड़ा से द्रवीभूत जेल जाने वाले वात्स्यायन इतनी सहजता से व्यक्तिवादी कहे जा सकते हैं? कलाकार की भी अपनी एक दुनिया होती है और इसीलिए बाह्य संसार तथा उसके अभ्यन्तर संसार के बीच तनाव की निरन्तरता बनी रहती है, किन्तु यह तनाव ही सृजन की प्रेरणा बनता है इसीलिए प्रयोगशील कवियों में व्यक्ति और समाज का द्वन्द्व निर्माणकारी है, विध्वंसकारी नहीं किन्तु आलोचकों ने प्रयोगशील काव्य को नितान्त वैयक्तिक तथा अहम् का पोषक ही माना है परिणामस्वरूप, प्रयोगशील काव्य के प्रवर्त्तक––अज्ञेय इस आक्षेप के सर्वाधिक शिकार हुए हैं जबकि स्पष्ट है कि

उनका अवचेतन ही नहीं चेतन भी इस तथ्य से पूर्णतः अवगत है कि समूह की अर्चना में व्यक्ति का मन कभी बाधा उत्पन्न नहीं करता।

अज्ञेय सामूहिक विकास के लिए व्यक्तित्व का विलयन ज़रूरी मानते हैं, साथ ही समाज की भी नैतिक ज़िम्मेदारी बताते हैं कि वह ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करे, जिससे व्यक्तित्व का विकास हो और इस प्रकार वह एक स्वतन्त्र व्यक्तित्व के साथ अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह कर सके। स्वाधीन कर्मी उत्तरदायित्व का अनुभव कर मानव कल्याण के पथ पर चलते हुए प्रकट होने वाले दुखों को भोगकर भी बार–बार इस लोक का वरण करना चाहता है। 'इन्द्रधनु रौंदे हुए ये' की कविता 'देना जीवन' में यही आकांक्षा है कि व्यक्ति स्वयं का ही होकर न रह जाये :

सुख, दुख, तड़पन
जो भी देना इतना भर–भर
एक अहं में वह न समाय–
एक ज़िन्दगी एक मरण का घेरा जिसको बाँध न पाय
बच रहने की प्यास मिटा दे जो इसलिये अमर कर जाय।

अकारण नहीं कि अज्ञेय ने व्यक्ति के साथ समाज को विस्मृत नहीं किया, किन्तु व्यक्ति की स्वाधीनता को तिलांजलि दिलाकर व्यक्ति से यह उम्मीद नहीं रखी जा सकती कि वह सामाजिक उत्तरदायित्व का निर्वाह कर सकेगा, क्योंकि इसके लिए आत्मप्रत्यभिज्ञा वाला मनुष्य होना चाहिए। यदि समाज व्यक्ति को साँचे ढली इकाई बनाना चाहता है तो ऐसा समाज उनकी दृष्टि में घृणित है। 'अरी ओ करुणा प्रभामय' की कविता 'नया कवि : आत्मोपदेश' से स्पष्ट है कि मानव–कल्याण के मार्ग पर अकेले चलने वाले पथिक को समाज उपेक्षा की दृष्टि से न देखे :

भीड़ का मत हो, डटा रह, मगर
दिग्वद् पान्थ के समुदाय से तू
अकेला मत छूट
एकाकियों की राह?
वह भी है
मगर तब जब कि वह
सब के लिए तोड़ी गयी हो
अकेला निर्वाण?
वह भी है
अगर उसकी चाह
सभी के कल्याण के हित
स्वेच्छया छोड़ी गयी हो।

स्पष्ट है कि सामुदायिक हित हेतु यदि व्यक्ति अकेला पड़ भी जाता है तो अज्ञेय–निर्मित व्यक्ति को कोई गिला–शिकवा नहीं, क्योंकि उनके लिए निर्वाण का रूप ऐसा भी हो सकता है। 'नदी की बाँक पर छाया' की कविता 'परती का जीवन' में अज्ञेय ने महान् रचना–कर्म के लिए परम्परागत राजपथ को छोड़कर पगडण्डियों को खोजने और उन पर चलने की बात कही :

सब खेतों में
लीकें पड़ी हुई हैं
(डाल गये हैं लोग)
जिन्हें गोड़ता है समाज
उन लीकों की पूजा होती है
मैं अनदेखा
सहज
अनपुजी परती तोड़ रहा हूँ
ऐसे कामों का अपना ही सुख हैः
वह सुख अपनी रचना है
और वही है उसका पुरस्कार।

अज्ञेय जिस विशिष्ट समाज की चर्चा करते हैं, उसे साधारण अर्थ के समाज से अलगाने के लिए 'सामाजिक परिवृत्ति' कहना अधिक उपयुक्त मानते हैं जिसका अर्थ आचरण और अनुभूति की समानता है। इसी अनुभूति के आधार पर 'इत्यलम्' में 'बन्दी–स्वप्न' खण्ड का बन्दी व्यक्ति 'दिवाकर के प्रति दीप' जलाने का साहस कर बैठता है :

ज्योति तुम्हारी अक्षय है पर
जला–जलाकर नहीं बनी है–
और इधर यह शिखा कम्पमय–
यह मेरी कितनी अपनी है!
मैं मिट्टी हूँ, पर तुम होओ धन्य इसे अपनाकर !
यह लो मेरी ज्योति, दिवाकर :

तिल–तिल जलकर संवेदना का विकास होने पर ही द्रवीभूत हृदय यह कहने की हिम्मत जुटा सकता है। समाज निःसन्देह अक्षय हो परन्तु अनुभूति और संवेदना का धनी व्यक्ति तृणवत् रूप में भी उस मिट्टी में पलने वाले समुदाय को अमोल निधि देता है।

अज्ञेय के लिए समाज––मानव और मानवेतर (पशु, पक्षी, प्रकृति) के साथ एक अभ्यन्तर जगत् (निजी मन की यथार्थता) का भी है। यायावरी मन जब बरसों प्राकृतिक गोद में दुलार पाता है तो उसे अपना सहभोक्ता भी

मान सकता है और ऐसा होना स्वाभाविक ही है। यही कारण है कि उनकी समाज परिकल्पना में आत्मगत तत्व अपनी पहचान बनाये रखता है, जिसे इत्यलम्' संग्रह के 'हिय–हारिल' खण्ड की 'रहस्यवाद' कविता में देखा जा सकता है :

मैं भी एक प्रवाह में हूँ–
लेकिन मेरा रहस्यवाद ईश्वर की ओर उनमुख नहीं,
मैं उस असीम शक्ति से
सम्बन्ध जोड़ना चाहता हूँ–
अभिभूत होना चाहता हूँ–
जो मेरे भीतर है।
शक्ति असीम है
मैं शक्ति का एक अणु हूँ
मैं भी असीम हूँ।

यहाँ पर अज्ञेय पूर्ववर्ती काव्यधाराओं की भाँति परमशक्ति की असीमता स्वीकारते हैं, किन्तु अपनी निजता के स्तर पर असीम–अंशी का स्वयं को अंश मानते हुए व्यक्ति को भी असीम मानते हैं, लेकिन उस सर्वसत्ता की खोज से पूर्व व्यक्ति स्वयं को जाने और खोजे इस बात का आह्वान भी करते हैं। इस बाह्य और अभ्यन्तर जगत् के सान्निध्य के कारण सामाजिक और व्यक्तिगत चेहरे में जितनी समानता होगी उतना ही व्यक्ति सन्तुलित और नीतिवान् है, तभी वह 'वंचना के दुर्ग' के बीच 'मुक्त है आकाश' देखने में समर्थ होता है :

कब तलक यह आत्म–संचय की कृपणता! यह
घुमड़ता त्रास!
दानकर दो खुले कर से,
खुले उर से होम कर दो स्वयं को
समिधा बनाकर!

अज्ञेय साहित्य में आत्मदान की महत्ता निर्विवाद रूप से दृष्टिगोचर होती है। दरअसल मानव सामाजिक होने के नाते समाज से अलग नहीं हो सकता। दोनों के सूत्र परस्पराबद्ध हैं। समाज और व्यक्ति का सम्बन्ध कैसा होना चाहिए? व्यक्ति का समाज के प्रति आदर्श रूप और समाज का व्यक्ति के प्रति क्या कर्त्तव्य है? इस विषय पर अज्ञेय ने गहन चिन्तन किया है। अज्ञेय का व्यक्ति मन मछली रूप में चहुँ ओर से समाज रूपी सागर से घिरा हुआ है और इस विशाल भीड़ में स्वयं की पहचान ही व्यक्ति को समाज के प्रति उत्तरदायी बनाती है। समाज और व्यक्ति के सम्बन्ध को 'अन्तरा' अन्तःप्रक्रिया के इस उद्धरण में समाहित किया जा सकता है, 'मेरा बल इस पर होगा कि मानव कैसे व्यक्तित्व को बनाये रखते हुए समष्टि कल्याण का प्रयत्न करे। क्योंकि मानव का एक स्वतन्त्र व्यक्ति है, इसलिए

सामाजिक आचरण की जिम्मेदारी उस पर आ जाती है।' स्पष्ट है कि समूह से उनका सम्बन्ध सप्राण और अटूट है। व्यक्तित्व पर प्रश्रय तो है, किन्तु व्यक्ति स्वाधीन होने के नाते जिस उत्तरदायित्व को वहन करने का दम भरेगा वह अन्ततः समाज के प्रति ही होगा।

6.4 अभ्यास हेतु प्रश्न

प्र. 1 अज्ञेय के संदर्भ में व्यक्ति और व्यक्तित्व की अवधारणा स्पष्ट कीजिए।

_____

_____

_____

प्र. 2 अज्ञेय की कविता में व्यक्ति का महत्व प्रतिपादित कीजिए।

_____

_____

_____

प्र. 3 अज्ञेय की कविता में समाज का चित्रण कीजिए।

_____

_____

_____

प्र. 4 अज्ञेय की कविता में व्यक्ति और समाज का सम्बन्ध स्थापित कीजिए।

_____

_____

_____

6.5 संदर्भ ग्रन्थ/सहायक पुस्तकें

1. डॉ. ओमप्रकाश अवस्थी – अज्ञेय कवि
2. डॉ. गंगाप्रसाद विमल –अज्ञेय का रचना–संसार
3. ए. अरविन्दाक्षण – अज्ञेय काव्य में प्राग्बिंब और मिथक
4. प्रभाकर माचवे – अज्ञेय
5. रमेशचन्द्र शाह – अज्ञेयः वागर्थ का वैभव
6. डॉ. रजनी बाला – अज्ञेयः एक कृति के बहाने
7. डॉ. रजनी बाला – अज्ञेयः चिन्तन और काव्य
8. राजेन्द्र प्रसाद – अज्ञेयः कवि और काव्य
9. रामस्वरूप चतुर्वेदी – अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या
10. डॉ. सूरजप्रसाद मिश्र – आधुनिक हिन्दी कविता में व्यक्तित्व अंकन

निर्धारित कविताओं की मूल संवेदना

7.0 रूपरेखा

7.1 उद्देश्य

7.2 भूमिका

7.3 संवेदना का अभिप्राय

7.4 संवेदनागत परिवर्तन के कारण

7.5 'यह दीप अकेला' कविता की मूल संवेदना

7.6 'कलगी बाजरे की' कविता की मूल संवेदना

7.7 'शब्द और सत्य' कविता की मूल संवेदना

7.8 'नदी के द्वीप' कविता की मूल संवेदना

7.8 अभ्यास हेतु प्रश्न

7.9 संदर्भ ग्रन्थ/सहायक पुस्तकें

7.1 उद्देश्य

संवेदना सापेक्ष होने के कारण परिवर्तनशील है, अतः युग की आधुनिकता के साथ संवेदना भी आधुनिक होती है। संवेदना में परिवर्तन किन कारणों से होता है? उन परिवर्तनों ने आधुनिक साहित्य लेखन को किस प्रकार प्रभावित किया है? इन सभी पहलुओं की दृष्टि से निर्धारित कविताओं की मूल संवेदना पर विचार किया गया है।

7.2 भूमिका

अज्ञेय के लिए संवेदना का विस्तार उनके लेखकीय कर्म की चुनौती है अर्थात् वे मानते हैं कि साहित्य अप्रत्यक्ष ही सही––समाज की संवेदना को बदलता है। संवेदना में बदलाव का अभिप्राय साहित्य द्वारा प्रभावित होना है इसी को उन्होंने संस्कारित होना कहा है।

7.3 संवेदना का अभिप्राय

कवि की संवेदना का निष्पक्ष आकलन करने के लिए ज़रूरी है कि पाठक रचना में से उभरने वाली बातों और वर्ण्य–विषय के आधार पर संवेदना के विविध आयामों का अध्ययन करे। कवि संवेदना को ठीक–ठीक समझने के लिए आवश्यक है कि पाठक कवि के अन्तर्मन को जाँचने की चेष्टा करे, क्योंकि समाज के स्थूल और बाह्य तर्कों के आधार पर किसी भी रचनाकार और उसकी रचना का विश्लेषण समाजशास्त्र या राजनीतिक तत्त्व के आधार पर तो हो सकता है, साहित्य रूप में नहीं। इसके लिए यह भी आवश्यक है कि कवि अपने अन्तर्मन को चेतनात्मक स्तर पर लाकर विचार या चिन्तन को इस प्रकार अभिव्यक्ति दे कि वह पाठकीय संवेदना को छूकर बोल उठे।

सामान्य तौर पर वेदन, संवेदन या संवेदना शब्द का अर्थ होता है––ज्ञान अथवा अनुभूति। संवेदन शब्द के मूल में 'वेद' शब्द है जिसका अर्थ भी ज्ञान ही होता है। उसी से बना 'वेदन' शब्द ज्ञान अथवा बोध–प्राप्ति की क्रिया को कहते हैं। विद् से वेद, वेद से वेदन और वेदन से संवेदन शब्द बना है। प्रत्येक शब्द में मूल धातु विद् से जुड़ा हुआ अर्थ सम्मिलित है। संवेदनीय, संवेद्य, संवेदित आदि शब्दों के प्रयोग संवेदन शब्द से निकले हैं। यदि संवेदन का उपर्युक्त अर्थ ही ग्रहण किया जाये तो 'संवेदनीय' का अर्थ होगा, अनुभव करने योग्य अथवा बोध कराने योग्य। 'संवेद्य' अनुभवगम्य का पर्याय होगा और 'संवेदित' अनुभव किया हुआ या बोध किया हुआ।

अंग्रेजी में संवेदन के करीब पड़ने वाले शब्द हैं, सेन्सेशन, फीलिंग, सेंसिटिविटी, सेंसिबिलिटी अथवा सिम्पैथी या फेलो फीलिंग। इसके अतिरिक्त इसे 'एक्ट ऑर प्रोसेस ऑफ एक्सपीयरेंसिंग' का पर्याय माना जाता है। अंग्रेजी पर्याय के अनुसार संवेदन शब्द के अन्तर्गत इन्द्रियानुभव, भावानुभव, सहानुभूति, अनुभव–प्राप्ति की प्रक्रिया आदि का समाहार हो जाता है।

साधारणतया संवेदना शब्द को अंग्रेजी के 'सेंसबिलिटी' के माध्यम से समझाने की चेष्टा की जाती है जबकि संवेदना शब्द का अर्थ संभवतः 'सेंसिबिलिटी' से अधिक गहरा एवं व्यापक है। संस्कृत के 'विद्' से व्युत्पन्न होने के कारण इसका अर्थ अंग्रेजी शब्द सेंसेशन तक ही सीमित नहीं रहता बल्कि ज्ञान, समझ, नॉलेज भी इसी की सीमा में आ जाते हैं। इस प्रकार एक सीमा तक बौद्धिक चेतना भी 'संवेदना' शब्द के अर्थ में समाहित है। इस रूप में किसी की संवेदना का अर्थ उससे इतर के साथ उसकी सम्बन्ध–चेतना है या कहें कि संवेदना मूलतः 'मम' और 'ममेतर' की सम्बन्ध–चेतना है और यह एक सुखद जानकारी है कि कवि अज्ञेय भी 'संवेदना' के अर्थ को इसी रूप में ग्रहण करते हैं ''संवेदना वह यन्त्र है जिनके सहारे जीव–व्यष्टि अपने से इतर सब कुछ के साथ सम्बन्ध जोड़ती है––वह सम्बन्ध एक साथ ही एकता का भी है और भिन्नता का भी क्योंकि उसके सहारे जहाँ जीव–व्यष्टि अपने

से इतर जगत् को पहचानती है वहाँ उससे अपने को अलग भी करती है।'' इन पंक्तियों में 'जीव' के स्थान पर 'कवि' शब्द रख दिया जाये तो 'काव्य संवेदना' का अभिप्राय हमारे आगे स्पष्ट हो जाता है।

साहित्यकार को अनुभव और अनुभूति के स्तर पर कुछ गहराये, कुछ परचाये और पाठक कृति के प्रयाण के बाद कुछ बदल जाये, कृति पढ़ने से पूर्व वह जो था वह कृति पढ़ने के पश्चात् न रहे, कुछ नया उसे छुये वही संवेदना है। साहित्यकार को रचना के स्तर पर सृजन हेतु उत्प्रेरित करने वाली और पाठक को सम्प्रेषण के स्तर पर संस्कारित करने की अनुभूति का नाम संवेदना है। इस साझे की प्रक्रिया के कारण ही संवेदना की समस्याएँ और परिवर्तन के कारण सामान्यतः वही हैं जो सम्प्रेषण के हैं। अज्ञेय के लिए संवेदना ही आधुनिक संवेदना भी होती है। 'आधुनिक हिन्दी साहित्य' में संगृहीत 'साहित्य–बोध : आधुनिकता के तत्व' निबन्ध में वह संवेदना के सहारे आत्म के बाहर सबके साथ सम्बन्ध बनाते हैं। अपने से इतर के साथ सम्बन्ध जोड़ने का अर्थ हुआ कि मानवीय संवेदना अपने विस्तार के साथ नये–नये क्षेत्रों से सम्बन्ध जोड़ती हुई नैतिक बोध से जुड़ जाती है।

7.4 संवेदनागत परिवर्तन के कारण

अज्ञेय के समक्ष संवेदनागत समस्याएँ तीन उठी हैं––विज्ञान ने ईश्वर को अपदस्थ कर मनुष्य को वहाँ प्रतिष्ठापित किया, प्रकृति की नवीन परिकल्पना से मानव भी पशु और यन्त्र बन गया है। दूसरे, नैतिकता सापेक्ष होती है, रचना और गति किस तत्व की है वह तत्व संदिग्ध होने के कारण नैतिकता भी संदिग्ध हो गयी। तीसरे, संचार साधनों की प्रगति से विज्ञान की दुनिया की अयथार्थता ने यथार्थ को सन्देहास्पद बना दिया। इन सब परिवर्तनों से जीवन–दर्शन बदला और संवेदना में परिवर्तन ज़रूरी हो गया।

गुलाम भारत के समक्ष एक निश्चित लक्ष्य था––आज़ादी। परिणामतः सामाजिक एकता विद्यमान थी, किन्तु आज़ादी मिलने के बाद नये लक्ष्य को पाने की फिर कोई एक निश्चित दिशा न रही। सर्वसाधारण में यह धारणा बन गयी कि स्वतन्त्रता उसका अपना और केवल उसी का अधिकार है और वही उसका उपभोक्ता है। राजनीतिक संगठनों ने अपने स्वार्थ की नदी में जनकल्याण के वायदों को डुबो दिया। चीन और पाक आक्रमणों से मानव की रही–सही हिम्मत ज़वाब दे गयी। चारों ओर मूल्य–संक्रान्ति का मकड़–जाल नैतिक मूल्यों को ग्रसित करने लगा। ऐसे माहौल में वैयक्तिक चेतना प्रबल होती जा रही थी, दूसरी ओर साहित्यकार सामाजिक दायित्व–बोध की प्रबल अनिवार्यता से पीड़ित होने लगा। इन सब के साथ दो विश्वयुद्धों की विभीषिका में झुलसे मानव को तीसरे महायुद्ध की आशंका भी भय और अनास्था के पाटों के बीच पीसे जा रही थी। राजनीतिक और सामाजिक धरातल पर इन परिस्थितियों के विघटनकारी परिवेश के कारण साहित्यकार की संवेदनाएँ उलझती गयीं, परिणामस्वरूप पूर्व प्रचलित साहित्यिक अन्तर्वस्तु की अवहेलना अनिवार्य हो गयी।

अब भक्त–कवियों की भाँति न तो समस्याओं के समाधान हेतु ईश्वर को धरती पर उतारने का आह्वान किया जा सकता था, क्योंकि विज्ञान ने ईश्वर को नकार दिया। रीतिकवियों के समान राज–प्रशस्ति के गीत भी वांछनीय न रहे क्योंकि अंग्रेज़ सरकार, साहित्यकार के लिए घृणा की पात्र थी और स्वतन्त्र भारत की सरकार

कर्त्तव्यच्युत। इसके साथ ही आधुनिक कवियों की भाँति समकालीन रचनाकार प्रकृति को प्रेयसी नहीं मान सका, क्योंकि उसका हृदय अपने युग के संत्रास से अभिशप्त था। नये यथार्थ–बोध से प्रयोगवाद और प्रगतिवाद सामने आया और स्वप्न–भंग की स्थिति नयी कविता के केन्द्र में आ गयी।

संवेदनागत परिवर्तन को जाँचने के बावजूद अभिव्यक्तिगत परिवर्तन बनावटी हो सकता है––मुख्य बात है संवेदना को अनुभूति के स्तर पर आत्मसात् करना। अपनी ही अस्मित चिता पर सर्जक स्वयं को जलाये तभी बात बनती है अन्यथा नये संवेदन और तदनुरूप नये सम्प्रेषण की चुनौतियों को ठीक–ठीक पहचाने बिना केवल नयी पद्धतियों का मोह अराजक मुहावरेबाज़ी के सिवाय कुछ नहीं रहता, लेकिन संवेदनागत परिवर्तन जब रचनाकार के भीतर घटित होता है तो गहरी एकात्मकता और सम्पृक्ति देखने को मिलती है। संवेदना से अनछुआ कवि, शिल्प के नये प्रयोगों से तत्कालीन समाज में पानी में फेंके कंकड़ की भाँति हलचल तो मचा सकता है, किन्तु जल्दी ही स्पन्दनहीन भी हो जाता है। यदि कवि संवेदना से जुड़ा हुआ है तो संवेदनाजनित अनुभूति पुरानी नहीं होती क्योंकि उसकी अनुभूति सबकी अनुभूति बनकर स्पन्दित होती रहती है।

संवेदना में परिवर्तन ऐतिहासिक काल–क्रम के अधीन नहीं है, अतः परिस्थितियों में क्रमशः आते गये परिवर्तनों और उनसे पैदा होने वाली आवश्यकताओं के अनुरूप संवेदना का स्वरूप बदलता रहता है। अज्ञेय के अनुसार संवेदना जैविक नहीं होती, क्योंकि तब तो मानवीय संवेदना का प्रश्न ही नहीं उठता, किन्तु संवेदना का सम्बन्ध सांस्कृतिक बोध के साथ है जो अनुक्षण परिवर्तनीय है। उनके अनुसार संवेदना बाहरी स्तर पर जितनी सतही होती है, उतनी गहरी भी। इन सभी समस्याओं से जूझते हुए क्या रचनाकार रचना के माध्यम से समाज के संवेदन को छूता है? अर्थात् क्या साहित्य का धर्म समाज को परिवर्तित करना है? और यदि हाँ तो साहित्य की दृष्टि से ऐसी रचना किस काटि में आनी चाहिए? ऐसे प्रश्न संवेदना द्वारा मानव को संस्कारित करने या संस्कारवान् होने की क्रिया के साथ उठ खड़े होते हैं।

मानवीय संवेदना में व्यापक एवं सूक्ष्म स्तर पर परिवर्तन होना ही युग–परिवर्तन होना है क्योंकि ''जीवन का स्रोत घटना का स्रोत नहीं है––वह चेतना का स्रोत है।'' और इसी आधार पर हम इतिहास के किसी भी युग को बखूबी समझ सकते हैं––अन्यथा इतिहास मात्र घटना–क्रम ही होकर रह जायेगा। यही बात काव्य–क्षेत्र में भी है। किसी भी काव्य–युग को अथवा किसी विशिष्ट कवि को समझने के लिए यह ज़रूरी हो जाता है कि विभिन्न चेतना–स्रोतों के उन प्रभावों का भी अध्ययन किया जाये तो उसने ग्रहण किये हैं।

अज्ञेय की काव्य–यात्रा मात्र उनके शैल्पिक विकास की ही यात्रा नहीं है। वह एक स्वस्थ एवं उन्मुक्त कवि–मनीषी की अनवरत यात्रा है जो सभी ग्राह्य प्रभावों को निरन्तर सहज रूप से ग्रहण करती, आत्मसात् करती और इस प्रकार अपने को परिष्कृत, ताजा एवं पूर्ण करती चलती है।

अज्ञेय हिन्दी के प्रथम समर्थ कवि हैं जिन्होंने अपनी संवेदना को विज्ञान के अधुनातन शोधों एवं दर्शन की समस्त–पूर्वी और पश्चिमी–परम्परा से निरन्तर संस्कारित किया है और इस प्रभाव–ग्रहण को मुक्त मन से स्वीकार भी किया है।

7.5 'यह दीप अकेला' कविता की संवेदना

अज्ञेय समाज को महत्त्व देते हैं किन्तु व्यक्ति की अपेक्षा करके नहीं व्यक्ति चाहे 'लघु मानव' ही क्यों न हो उसकी सुरक्षा तथा उसके स्वतन्त्र विकास के वे पक्षधर हैं। वे 'आडम्बरों से सुशोभित समाज के बदले कुंठा–रहित इकाई' या अकेले व्यक्ति को अच्छा समझते हैं। समाज में कभी–कभी थोड़े चतुर और प्रभावशाली व्यक्ति सत्ता से जुड़ जाते हैं और सारे समाज को एक ढांचे में ढाल लेना चाहते हैं। इससे व्यक्ति का स्वतन्त्र विकास रुक जाता है। कवि ऐसे समाज का विरोध करता है।

कवि को अकेले दीपक की आस्था में विश्वास है, जो अकेला होने पर भी, लघु होने पर भी कभी काँपता नहीं। वह अपनी तुलना स्नेह से भरे हुए उस दीपक से करता है जो अकेला है किन्तु अकेला होने पर भी गर्व से भरा है। दीपक अकेलेपन में भी सुशोभित है, सार्थक है। उसके व्यक्तित्व को नष्ट करने की आवश्यकता नहीं है किन्तु यदि आवश्यक हो तो इसे पंक्ति को या समूह को दिया जा सकता है। अकेले दीपक को गौरव देकर कवि जिस व्यक्तिवाद को प्रश्रय देता है वह मानवतावादी है किन्तु उसे पंक्ति को देने की इच्छा व्यक्त करके वह उसे समाज से जोड़ देना चाहता है। कवि का लक्ष्य एक ऐसे समाज की स्थापना से है, जिसमें व्यक्ति का महत्त्व होगा, व्यक्ति अपने अस्तित्व पर, अपनी स्वतन्त्रता पर गर्व कर सकेगा। व्यक्ति से उसकी अपेक्षा है कि यदि आवश्यकता हो तो वह समाज के हित के लिए अपने को उत्सर्ग करने के लिए प्रस्तुत रहे। इस प्रकार अज्ञेय की कल्पना के समाज में व्यक्ति और समाज दोनों का महत्त्व होगा।

व्यक्ति–वैशिष्ट्य अज्ञेय की किसी भी कविता में घोर व्यक्तिवादी स्तर पर प्रकट नहीं होता, बल्कि समाज की एक दायित्ववान, जागरुक, जीवन्त इकाई के रूप में ही उपस्थित होता है। यह अवश्य है कि व्यक्ति और समाज के सम्बन्धों में व्यक्ति की सुरक्षा, कल्याण, स्वतन्त्रता, आत्म विकास के लिए सामाजिक नियमों की अच्छाई–बुराई का नाप अज्ञेय मानते हैं, क्योंकि अन्यथा सारी सामाजिकता कुछ थोड़े से लोगों की ही स्वार्थ–सिद्धि का मायाजाल बनकर रह जाती है। व्यक्ति के स्वतन्त्र, सम्पन्न एवं समृद्ध व्यक्तित्व का आग्रह एक प्रकार से समाज को अधिक चैतन्यपूर्ण, स्पन्दनशील और व्यक्तिवान बनाने का ही आग्रह है। सभी सर्जनात्मक कार्य व्यक्ति के माध्यम से ही संभव होते हैं, फिर वह काव्य हो, ('यह जन है : गाता गीत जिन्हें फिर और कौन गायेगा ?'), सत्य की उपलब्धि हो, (पनडुब्बा : ये मोती सच्चे फिर कौन कृति लायेगा ?') या विचार–क्रान्ति हो ('यह समिधा : ऐसी आग हठीला बिरला सुलगायेगा।') यह सब 'अद्वितीय', 'अकेला स्नेह–भरा', 'गर्व–भरा', 'मदमाता' दीप ही कर सकता है। अगर 'गर्व' नहीं है तो अपने व्यक्तित्व की पहचान नहीं है, अतः प्रभाव भी नहीं है। यह दीप स्नेह भरा भी है, क्योंकि सिवाय स्नेह के 'विसर्जन' के समष्टि का हित संभव नहीं है। इस प्राणवान, समर्थ, सर्जनशील व्यक्तित्व का इससे अधिक सशक्त वर्णन क्या हो सकता है कि–

यह मधु है : स्वयं काल की मौना का युग–संचय,
यह गोरस : जीवन–कामधेनु का अमृत–पूत पय,
यह अंकुर : फोड़ धरा को रवि को तकता निर्भय

इस अकेले स्नेह–भरे मदमाते दीप की यह अपराजित आस्था और समाज की अंधाधुंध टीका–टिप्पणियों के अंधकार में अपनापे से भक्त की भाँति लौ लगाना और यह कहना कि–

यह वह विश्वास नहीं, जो अपनी लघुता में भी काँपा;
यह पीड़ा, जिसकी गहराई को स्वयं उसी ने नापा,
कुत्सा, अपमान, अवज्ञा के धुंधआते कडुवे तम में,
यह सदा–द्रवित, चिर जागरुक, अनुरक्त–नेत्र,
उल्लम्ब–बाहु, यह चिर अखण्ड अपनापा।
जिज्ञासु, प्रबुद्ध, सदा श्रद्धामय।

और इस व्यक्तित्व को आकांक्षा यही है कि–'इसको भक्ति को दे दो।' अज्ञेय की वस्तुतः यह कविता समाज और व्यक्ति के सम्बन्धों की सच्ची व्याख्या करती है। 'नदी के द्वीप' कविता व्यक्ति की सीमाओं का संकेत करती है और 'यह दीप अकेला' उसकी शक्ति का गहरा बोध कराने में समर्थ है।

उपन्यास 'नदी के द्वीप' में भुवन द्वारा गौरा को लिखे गये पत्र में अज्ञेय की व्यक्ति सम्बन्धी मान्यता स्पष्ट होती है : ''व्यक्ति का स्वतन्त्र विकास जब तक पूरा नहीं हो जाता, तब तक उसे इकाई से बाहर प्रसृत करने का प्रश्न ही नहीं उठता, वह प्रश्न तभी उठना चाहिए, जब उसके बिना विकास के मार्ग न हों।'' इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि अज्ञेय की दृष्टि में स्वतन्त्र विकास के पश्चात् की स्थिति 'इकाई से बाहर प्रसृत' होना ही है।

इसी कारण यह आकस्मिक नहीं लगता कि 'नदी के द्वीप' की भाँति अपने को अलग रखने वाला कवि भी अपने को सहज भाव से पंक्तिबद्ध कर देता है :

यह दीप अकेला स्नेह भरा
है गर्व–भरा मदमाता पर
इसको भी पंक्ति दे दो।

यह कविता अज्ञेय के व्यक्तिवाद––अधिक स्पष्ट शब्दों में कहें तो वैयक्तिकतामूलक मानववाद को समझने की कुंजी है और यह भी कि यह धारणा किसी पश्चिमी दर्शन से प्रभावित न होकर मूलतः देशज विचार पद्धति से ही संस्कारित है। पुराणों में वर्णित 'तप' प्रकारान्तर से स्वतन्त्र आन्तरिक विकास की ही प्रक्रिया है जिसके पश्चात् तपस्वी का जीवन 'ममेतर' को समर्पित रहता है। स्वयं कुण्ठा मुक्त हुए बिना दूसरों को कुण्ठारहित करना कहाँ सम्भव है ?

7.6 'कलगी बाजरे की' कविता की मूल संवेदना

छायावादी काव्य रोमैंटिक काव्य मात्र नहीं है, उसमें रोमैंटिसिज़्म के तत्त्वों का कुशल उपयोग हुआ है। प्रगतिवाद ने भौतिकवादी दर्शन से प्रेरणा लेकर सजग रूप में छायावादी काव्य की रोमैंटिक वृत्ति का विरोध किया, पर मूलतः प्रगतिवाद स्वयं भावावेश का काव्य था।

अज्ञेय ने प्रगतिवादी आन्दोलन को निकट से देखा–समझा था, और उन्होंने प्रयोगवादी अभियान में केवल विषयवस्तु पर नहीं, आन्तरिक सम्बन्धों को बदलने पर बल दिया। अपने विरोध या विद्रोह को भी उन्होंने ठण्डे भाव से ही व्यक्त किया :

अगर मैं तुमको
ललाती साँझ के नभ की अकेली तारिका
अब नहीं कहता,
या शरद के भोर की नीहार–न्हायी कुंई,
टटकी कली चम्पे की
वग़ैरह, तो
यह नहीं कि मेरा हृदय उथला या कि सूना है
या कि मेरा प्यार मैला है।
बल्कि केवल यही :
ये उपमान मैले हो गये हैं।
देवता इन प्रतीकों के कर गये हैं कूच।

'वग़ैरह' का हलका और ठण्डा तिरस्कार समूचे अंश को भावात्मक स्तर पर एक साथ बांधता है। प्रगतिवादी कवि इस बात को बिना ललकारे हुए नहीं कह सकता था। रोमैंटिसिज़्म से अलग मिज़ाज के ठण्डेपन का यह आभास पहली बार अज्ञेय में मिलता है, इसीलिए अज्ञेय रोमैंटिसिज़्म विरोधी नहीं, ग़ैर रोमैंटिक हैं।

अज्ञेय एक ऐसे प्रेमी और रचनाकार हैं जिन्होंने प्रिय की स्वाधीनता को निज की स्वत्व कुप्पियों में भरना नहीं जाना। वह प्रेम में अधिकार नहीं वरन् समर्पण चाहते हैं। उन्हें खुले में खड़े पेड़ की तरह स्वाधीनता पसन्द है। संभवतः यही कारण है कि वह किसी ठप्पाई मानसिकता में विश्वास नहीं करते। उन्हें न ठप्पे से निर्मित कला पसन्द है और न ही रुढ़ हो चुकी संवेदना या भाषा उनके इस समग्र वैचारिक बोध का परिणाम है 'कलगी बाजरे की' कविता। स्त्री देह के लिए संगमरमरी मूरत, चौदहवीं का चाँद, खंजन नयन, मीन नयन जैसे प्रयोग रूढ़ होकर कोई नवीन भाव जगाने में सक्षम नहीं रहे हैं। प्रेम और प्रिय की जो परिकल्पना अज्ञेय के यहाँ है उसकी काव्यात्मक परिणति का सशक्त उदाहरण विवेच्य कविता है। इसीलिए कवि को संदेह है कि कहीं उसकी प्रियतमा परम्परागत उपमानों प्रतीकों का प्रयोग स्वयं के लिए होता न देख यह समझने की गलती न कर दे कि कवि उसे प्रेम नहीं करता है या उसके प्रेम में कोई खोट है। वर्तमान में जैसे 'थैंक्यू', 'सॉरी', 'आई लव यू' जैसे शब्दों से संवेदना और भावों ने अपना पल्ला झाड़ लिया है वैसे ही अज्ञेय मानते हैं परम्परागत खासतौर से रीतकालीन या छायावादी ढंग की प्रेमाभिव्यक्ति उनके सरोकारों पर खरी नहीं उतरती इसीलिए वह अपनी नायिका को 'कलगी बाजरे की' या 'हरी बिछली घास कहना अधिक प्रासंगिक समझते हैं। इन दोनों उपमानों से स्पष्ट है कि अज्ञेय के लिए प्रेमिका (स्त्री) सामान्य होने के बावजूद कितने विराट् व्यक्तित्व की धनी है। ये सम्बोधन प्रिय के प्रति प्रेमी के अगाध प्रेम, समर्पण एवं निष्ठा के प्रतिबिम्ब हैं।

7.7 'शब्द और सत्य' कविता की मूल संवेदना

अज्ञेय एक ऐसे रचनाकार हैं जो समस्त रचना–कर्म में शब्द और सत्य की परस्पर पूरकता पर सर्वाधिक ध्यान देते हैं। रचना प्रक्रिया के तीन पड़ावों मसलन अनुभूति, तनाव और अभिव्यक्ति से प्रत्येक रचनाकार गुजरता है। समस्या यह है कि ये तीनों पड़ाव विकास की प्रक्रिया में बदल जाते हैं जिसके कारण लेखक को बार–बार शंका होने लगती है कि जो और जिस रूप में वह अभिव्यक्त करना चाहता है, वह नहीं हो पा रहा। 'अरी ओ करुणा 'प्रभामय' काव्य–संग्रह की कविता 'शब्द और सत्य' कवि–कर्म से जुड़ी इसी बेचैनी को सामने रखती है :

यह नहीं कि मैंने सत्य नहीं पाया था
यह नहीं कि मुझको शब्द अचानक कभी–कभी मिलता है :
दोनों जब–तब सम्मुख आते ही रहते हैं।
प्रश्न यही रहता है :
दोनों जो अपने बीच दीवार बनाये रहते हैं
मैं कब, कैसे उन के अनदेखे
उस में सेंध लगा दूँ
या भर कर विस्फोटक
उसे उड़ा दूँ।

इस प्रकार सृजन–प्रक्रिया के अन्तर्गत अनुभूतियों के भावन से लेकर उस प्रक्रिया तक का जिक्र होता है, जिसमें सर्जक एक अभ्यन्तर तनाव की उपस्थिति के बीच उस तनाव से मुक्ति की भी चेष्टा करता है जिसका माध्यम अभिव्यक्ति है। कवि को ऐसी अनुभूति तो होती ही रहती है जो कविता का विषय बन सके किन्तु समस्या यह है कि उस अनुभूति को उसी रूप में वांछित शब्दों में कैसे अभिव्यक्त किया जाए।

प्राचीन आचार्यों ने कलात्मक अभिव्यक्ति के लिए प्रतिभा को नैसर्गिक मानते हुए दैव–कृपा कहा किन्तु अज्ञेय ने प्रतिभा को सज्ञान कहा। सज्ञान न होने पर प्रतिभा में कमी आती है ऐसा वह मानते हैं। कवि को विषय कैसे सूझता है, यह प्रतिभा पर निर्भर करता है। विषय पकड़ में है लेकिन यह न जान सकें कि अभिव्यक्त क्या करना चाहते हैं तब प्रतिभा का दायित्व बढ़ जाता है। इसी प्रतिभा को 'अभ्यन्तर तनाव की स्थिति' कहा गया है जो इस कविता की केन्द्रीय संवेदना बनकर प्रस्तुत हुआ है।

कवि को समझ नहीं आता कि वह प्राप्त विषय अथवा अनुभूति के आधार पर अभिव्यक्ति के कौन–से साधन अपनाये। इस पीड़ा से ही कवि के अन्तर्मन में रचना जन्म लेती है किन्तु अभिव्यक्ति के साधन जिन्हें कविता में 'शब्द' कहा गया है सटीक रूप में नहीं मिल पाते। कवि–मन के भीतर भावों की अभिव्यक्ति और बाहरी स्तर पर उनका अभिव्यक्त न होना पाना जिसे कविता में 'सत्य' कहा गया है, का तनाव ही 'शब्द और सत्य' कविता की मूल संवेदना है।

अनुभूति या तनाव का होना ही रचना नहीं है। रचना तभी संभव है जब प्राप्त सत्य की अभिव्यक्ति के अनुरूप अभिव्यक्ति के माध्यम अर्थात् उचित शब्द मिले :

कवि जो होंगे हों, जो कुछ करते हैं करें,
प्रयोजन बस मेरा इतना है–
ये दोनों जो
सदा एक–दूसरे से तन कर रहते हैं,
कब, कैसे किस आलोक–स्फुरण में
इन्हें मिला दूँ–
दोनों जो हैं बन्धु, सखा, चिर सहचर मेरे।

तनाव से मुक्ति के प्रयत्न में कवि रचना करता है किन्तु मुक्ति प्रयत्न लक्ष्य नहीं होती। यही कारण है कि एक बार सृजन–पीड़ा से मुक्त होकर सर्जक पूर्व भाव की उसी पीड़ा में पुनः नहीं आ सकता। इस प्रकार भाव, विचार के अनुसार पीड़ा का रूप बदलता रहता है। उस परिवर्तित रूप के कारण सफल अभिव्यक्ति अर्थात् अनुभूति के अनुरूप शाब्दिक अभिव्यक्ति के कुशल प्रयोग का अभाव सर्जक के भीतर तनाव की एक सतत धारा प्रवाहित करता रहता है जिसे 'शब्द और सत्य' कविता में बुना गया है। सत्य के अनुरूप शब्द का सार्थक प्रयोग ही सर्जक की योग्यता की कसौटी है।

7.8 'नदी के द्वीप' कविता की मूल संवेदना

'नदी के द्वीप' कविता प्रायः व्यर्थ ही कटु आलोचना का कारण बनी है। इसका मूल कारण उसके प्रतीकों को सतही स्तर पर ग्रहण करने में निहित है। यहाँ व्यक्ति की सीमा का आख्यान है। द्वीप की सार्थकता द्वीप होकर रहने में ही है, द्वीप जब अपनी नियति से विद्रोह करता है, तब उसकी वैयक्तिक सार्थकता नष्ट होती है और वह अनुपयोगी भी होता है। व्यक्ति को चाहिए, वह अपने आत्म–संस्कार के लिए उद्यत रहे, जीवन (तरंग) से जो दाय मिलता है, उसको स्वीकार करे, उसके परिष्कार के लिए भी तैयार रहे। परन्तु काल–प्रवाह (नदी) की धारा को वह रोक नहीं सकता। जीवन में आस्था एवं प्रेम में विश्वास रखने वाला व्यक्ति इसी सीमा को स्वीकार कर चलेगा। केवल इस सीमित रूप में ही वह कविता मार्मिक हो उठती है। यह कविता अज्ञेय के क्रान्ति विद्रोह आदि के सम्बन्ध में वैचारिक बदलाव की सूचक है।

द्वन्द्व की परिणति कवि को निष्क्रिय नियतिवादिता में ले जाती है। वह सोचने लगता है कि उसकी नियति ही यही है। वह नदी के द्वीप की तरह अलग पड़ा है। द्वीप की नियति और उसकी नियति एक ही है :

किन्तु हम हैं द्वीप।
हम धारा नहीं हैं।

स्थिर समर्पण है हमारा। हम सदा से द्वीप हैं स्रोतस्विनी के।
किन्तु हम बहते नहीं हैं क्योंकि बहना रेत होना है।
हम बहेंगे तो रहेंगे ही नहीं
पैर उखड़ेंगे। प्लवन होगा। ठहरेंगे। सहेंगे।
बह जायेंगे।

'धारा' से समूह के साथ चलने का बोध देता है और द्वीपवत् स्थिति से एकाकीपन में पड़े रहने का। जो व्यक्ति द्वीप की स्थिति में पड़ा हुआ है वह भला विद्रोह कैसे कर सकेगा। धारा स्थिति–विशेष को नहीं स्वीकारती किन्तु द्वीप को तो स्वीकारना ही होगा इसलिए परिस्थिति के प्रति उसका स्थिर समर्पण है। द्वीप बहता नहीं किन्तु यदि बहने की चेष्टा करेगा, भावुकता में आकर अपनी नियति के विरूद्ध चल पड़ेगा तो फिर वह टिक नहीं सकेगा। उसके पैर उखड़ जायेंगे, वह बह जायेगा और अन्ततः उसका अस्तित्व ही नष्ट हो जायेगा। चूर्ण होकर भी द्वीप धारा नहीं बन पायेगा––ऐसी धारा जो अपने मार्ग में आने वाले अवरोधों को तोड़ देती है। अतः द्वीप कुछ न करने के प्रति कृत–संकल्प है। इस प्रकार कवि का हारा हुआ 'उद्वत विद्रोही' द्वीप की स्थिति से जुड़कर निष्क्रिय नियतिवादिता में शरण लेता है।

'नदी के द्वीप' कविता में यह संकेत भी मिलता है कि कवि की नियतिवादिता स्थिर रहने वाली नहीं है। यदि किसी कारण से अथवा 'दूसरों के किसी स्वैराचार से या अतिचार से नदी उमड़ पड़े और वह कर्मनाशा और कीर्तिनाशा, काल–प्रवाहिनी बन जाये' तो यह स्थिति भी कवि को स्वीकार है। 'उसी में रेत होकर फिर से छनने, जमने और कहीं न कहीं पैर टेकने, खड़ा होने' का विश्वास उसमें जगता है।

एक दूसरे स्तर पर यह नदी संस्कृति की है और द्वीप आधुनिकता का। नदी परम्परा की भी है और द्वीप ज्ञान–विज्ञान को रूपायित करता है। संस्कृति का पूर्ण त्याग कर आधुनिक नहीं हुआ जा सकता और परम्पराओं के संवेदनशील भावुकता भरे प्रवाह के बीच नवीन वैज्ञानिक चेतना के द्वीप को सान्निध्य प्राप्त हो जाये तो ऐसी स्थिति में नदी और द्वीप अपने–अपने आस्तित्व को बनाये रखते हुए भी एक–दूसरे को सुदृढ़ता ही प्रदान करेंगे। इस प्रकार 'नदी के द्वीप' कविता संवेदना के बहुवर्ती अर्थों को रूपायित करती है।

7.9 अभ्यास हेतु प्रश्न

प्र. 1 संवेदना की अवधारणा स्पष्ट कीजिए।

_____

_____

_____

प्र. 2 संवेदना के जटिल होने के कारण बताइए।

_____

_____

_____

प्र. 3 संवेदना परिवर्तन के कारण बताइए।

_____

_____

_____

प्र. 4 अज्ञेय की कविता 'यह दीप अकेला' की मूल संवेदना पर प्रकाश डालिए।

_____

_____

_____

प्र. 5 अज्ञेय की कविता 'कलगी बाजरे की' की मूल संवेदना पर प्रकाश डालिए।

_____

_____

_____

प्र. 6 अज्ञेय की कविता 'शब्द और सत्य' की मूल संवेदना पर प्रकाश डालिए।

_____

_____

_____

प्र. 7 अज्ञेय की कविता 'नदी के द्वीप' की मूल संवेदना पर प्रकाश डालिए।

_____

_____

_____

7.10 संदर्भ ग्रन्थ/सहायक पुस्तकें

1. डॉ. ओमप्रकाश अवस्थी – अज्ञेय कवि
2. डॉ. गंगाप्रसाद विमल – अज्ञेय का रचना–संसार
3. ए. अरविन्दाक्षण – अज्ञेय काव्य में प्राग्बिंब और मिथक
4. प्रभाकर माचवे – अज्ञेय
5. रमेशचन्द्र शाह – अज्ञेयः वागर्थ का वैभव
6. डॉ. रजनी बाला – अज्ञेयः एक कृति के बहाने
7. डॉ. रजनी बाला – अज्ञेयः चिन्तन और काव्य
8. राजेन्द्र प्रसाद – अज्ञेयः कवि और काव्य
9. रामस्वरूप चतुर्वेदी – अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या
10. डॉ. सूरजप्रसाद मिश्र – आधुनिक हिन्दी कविता में व्यक्तित्व अंकन

निर्धारित कविताओं का शिल्पगत सौन्दर्य

8.0 रूपरेखा

8.1 उद्देश्य

8.2 भूमिका

8.3 काव्य शिल्प में परिवर्तन के कारण

8.4 अज्ञेय का काव्य शिल्प

8.5 'यह दीप अकेला' कविता का शिल्पगत सौन्दर्य

8.6 'कलगी बाजरे की' कविता का शिल्पगत सौन्दर्य

8.7 'शब्द और सत्य' कविता का शिल्पगत सौन्दर्य

8.8 'नदी के द्वीप' कविता का शिल्पगत सौन्दर्य

8.9 अभ्यास हेतु प्रश्न

8.10 संदर्भ ग्रंथ/सहायक पुस्तकें

8.1 उद्देश्य

वस्तु के साथ शिल्प का अविभाज्य सम्बन्ध है। संवेदन–तत्त्वों को शिल्प ही रूपाकार प्रदान करता है तथा उन्हें ग्राह्य एवं प्रभावशाली बनाता है। यद्यपि वस्तु को शिल्प का स्थानापन्न नहीं माना जा सकता तथापि अज्ञेय के अनुसार 'वस्तु को शिल्प से अलग नहीं किया जा सकता।' किसी भी रचना का शिल्प और तन्त्र भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना की वह वस्तु जिसका संप्रेषण होना है। विशिष्ट वस्तु अपने संप्रेषण के लिए विशिष्ट शिल्प की अपेक्षा रखती है। इसका ज्ञान विद्यार्थी अर्जित कर सकेंगे।

8.2 भूमिका

अनुभूति को जिन उपकरणों के माध्यम से अभिव्यक्त किया जाता है, उन सब का सामूहिक रूप शिल्प है। शिल्प–विधान अनुभूति सापेक्ष होता है और अनुभूतियाँ परिस्थितियों तथा व्यक्तित्व के सापेक्ष। इस चक्र के कारण परिस्थिति और व्यक्तित्व का परिवर्तन अनुभूतियों को प्रभावित करता है और प्रभावित अनुभूतियों के अनुरूप शिल्प भी अपना स्वरूप परिवर्तित करने को बाध्य हो जाता है। यही कारण है कि अज्ञेय के काव्य–शिल्प में परिवर्तनशील नवीनता अक्षुण्ण बनी रहती है क्योंकि समसामयिक परिस्थितियों और उनके स्वयं के विचारों और व्यक्तित्व में गतिशीलता है, नवीन संवेदनाओं को ग्रहण करने की प्रवृत्ति है।

8.3 काव्य शिल्प में परिवर्तन के कारण

शिल्प सिर्फ रूपाकार या 'फार्म' नहीं है यह उससे अधिक है इसलिए अज्ञेय समेत प्रायः सभी नये कवियों ने शिल्प को पहले के कवियों की तुलना में कहीं अधिक महत्त्व दिया है। एक प्रकार से कथा में जो शैली है वही काव्य में शिल्प है। पूर्ववर्ती कविता का आख्यानक रूप शैली से जुड़े, यह उस दौर की कविता के लिए स्वाभाविक था, किन्तु परवर्ती काल में कविता के बदले तेवर के साथ कविता कहने और रचने का ढंग भी बदला जिससे शिल्प महत्त्वपूर्ण हो उठा। सामाजिक, राजनीतिक, राष्ट्रीय–अन्तर्राष्ट्रीय परिवर्तन शिल्प–विधान में भी दुर्बोधता के कारण बने। इसके अलावा संवेदना के अनुरूप इन कवियों को रस, छन्द की परम्परागत धारणा को त्याग कर उपमान, प्रतीक, बिम्ब के परम्परागत बासनों को माजना पड़ा। इसके साथ ही विविध सैद्धान्तिक चिन्तन––मनोविज्ञान, अस्तित्ववाद, मार्क्सवाद के चलते मानवीय संत्रास और अकेलेपन के अहसास से संवेदना का पुराना ढांचा ढह गया और भावानुरूप परिवर्तित शिल्प की आवश्यकता हुई। इन सबसे कवि के मन पर इतनी गहरी छाप पड़ी कि वह उसे सीधे–सीधे व्यक्त करने में असमर्थ है। वह केवल एक संकेत देता है जिससे पाठक आगे बढ़कर उसे देख सकें। इन सभी परिवर्तनों के कारण कवि–दृष्टि का विकास और परिवर्तन हुआ और उसकी संवेदना में गहराई आयी, जिससे अभिव्यक्ति के परम्परागत साधन पुराने पड़ गये। संवेदना के आयामों में नवीनीकरण के कारण न तो भारतेन्दु युगीन खड़ी बोली की शैशवास्था वाला शिल्प वांछनीय रहा और न ही द्विवेदी युग का वर्णन प्रधान इतिवृत्तात्मक शिल्प ही अभीष्ट था। छायावाद का अभिजात्यवादी, जनसाधारण से दूरी रखने वाला शिल्प भी प्रयोगशील संवेदना को अभिव्यक्त देने में असमर्थ था। इन पूर्व–प्रचलित शिल्प–विधान की असंगति के कारण प्रयोगशील कविता ने शिल्प के क्षेत्र में नवीन प्रयोग किये।

8.4 अज्ञेय का काव्य शिल्प

अज्ञेय का साहित्य सुव्यवस्थित और तर्काश्रित है, ज़ाहिर है उनके लिए क्या हुआ मात्र नहीं, बल्कि 'कैसे' और 'किस क्रम में' हुआ की यात्रा महत्त्वपूर्ण हो जाती है इसीलिए अज्ञेय के काव्य में शिल्प से अलग काव्यानुभूति नहीं है। अज्ञेय की सृजन–प्रक्रिया, संवेदना, शिल्प––सभी परिवर्तनों के मूल में एक कारण आधारभूत रूप में मिलता है कि अधिसंख्य समस्याएँ, श्रुत से पठित परम्परा की ओर अग्रसरण से हुई हैं। मुद्रित रूप के कारण कविता की मूल संरचना में परिवर्तन सरल हो गया और इन सबके साथ श्रोता से पाठक बनते ही पाठक सहृदय का काव्य–संस्कार छोड़ बैठा। मुद्रण प्रणाली से आये परिवर्तन को 'सागर–मुद्रा' की कविता 'ग्रीष्म की रात' में समझा जा सकता है। इस

कविता का मर्म वाचिक परम्परा के माध्यम से भेद पाना दुष्प्रायः है, क्योंकि बिम्बाधिक्य ठहराव की माँग करता है जो पाठक द्वारा पढ़ते हुए ही लाया जा सकता है :

कोयल ने टेरा : कुहू !
कि पपीहे ने पलटा : कहाँ ?
कसैली आँखें : मटमैला सवेरा।

यहाँ बिम्बों की प्रचुरता के साथ विविध चिह्नों का प्रयोग वाचिक पद्धति से ग्रहण करना क्लिष्ट है, क्योंकि वक्ता वाचन करते समय काव्यास्वाद के बीच हस्तक्षेप करते हुए यह तो नहीं बता सकता कि सेमीकॉलन, कॉलन, पूर्ण विराम और प्रश्नवाचक अपना कहाँ स्थान रखते हैं?

8.5 'यह दीप अकेला' कविता का शिल्पगत सौन्दर्य

साहित्य क्योंकि अनुभव का सम्प्रेषण करता है और अनुभव विशिष्ट होने के कारण अकथनीय है, अतः मौन ही अभिव्यक्ति का समर्थ माध्यम हो सकता है। 'नदी के द्वीप' उपन्यास में गौरा गहन अनुभूति लिखने में स्वयं को असमर्थ पाती है, ''शब्द अधूरे हैं, उच्चारण माँगते हैं : लेकिन शब्दों के अन्तराल, पदों वाक्यों की यति में उस यति के मौन में एक शक्ति है जो उच्चारण के अधूरेपन को ढक लेती है, सम्पूर्णता देती है''।

भाषा को अपर्याप्त पाकर अज्ञेय विराम संकेतों, आड़ी–तिरछी लकीरों, छोटे–बड़े टाइपों से और पंक्ति के मध्य अन्तराल से कविता रचने लगे। कविता पहले शब्द से बनती थी अब कॉमा, फुलस्टॉप से बनने लगी। अज्ञेय ने निबन्ध संग्रह 'आलवाल' में लिखा है ''कवि शब्दों का न केवल भरपूर सार्थक प्रयोग करता है––बल्कि कभी–कभी शब्दों या वर्णों का उपयोग न करके ही अर्थ की वृद्धि करता है––यानी शब्दों का ही अर्थगर्भ उपयोग नहीं, अथगर्भ मौन का भी उपयोग करता है।'' इसी अर्थगर्भ मौन के कारण कविता शब्दों के बीच की नीरवता में भी होती है। जैसे हम भावों की अतिशयता में मौन हो जाते हैं और दूसरा पक्ष उस मौन से उत्पन्न भाव को समझा जाता है, उसी प्रकार कवि के शब्दगत मौन से पाठक अर्थ को पकड़ लेता है। इस कारण अज्ञेय मौन को निर्जीव नहीं मानते और 'चुप की दहाड़' सुन लेते हैं। उन्हें 'सन्नाटे में भी शोर' सुनाई देता है, लेकिन यह शोर अनेक स्तरीय और अर्थगर्भित होता है।

अज्ञेय की मौन–भाषा में प्रयुक्त सांकेतिक चिह्नों में विसर्ग (:) का प्रयोग पूर्व कथन की व्याख्या के लिए, एक ही वर्ण्य विषय की अलग–अलग विशेषता गिनाने के लिए किया गया है। विसर्ग का प्रयोग कथन पर बल देने के प्रयोजन से विसर्ग के बाद के कथन के लिए होता है। विसर्ग के माध्यम से एक कथन स्वतः पूर्ण होता है। अधिकांशतः नयी कविता के संग्रहों में इसके प्रयोग लक्षित होते हैं, किन्तु प्रथम प्रयास 'हरी घास पर क्षण भर' की कविता 'शरद' में मिलता है। पूर्व कथन की व्याख्या के लिए विसर्ग का प्रयोग 'बावरा अहेरी' की कविता 'यह दीप अकेला' में हुआ है :

यह जन है : गाता गीत जिन्हें फिर और कौन गायेगा ?
यह पनडुब्बा : ये मोती सच्चे फिर कौन कृति लायेगा ?

यह समिधा : ऐसी आग हठीला बिरला सुलगायेगा।
यह अद्वितीय : यह मेरा : यह मैं स्वयं विसर्जित
यह दीप, अकेला, स्नेह भरा,
है गर्व भरा मदमाता, पर
इसको भी पंक्ति को दे दो।
यह मधु है : स्वयं काल की मौना का युग–संचय,
यह गोरस : जीवन–कामधेनु का अमृत–पूत पय
यह अंकुर : फोड़ धरा को रवि को तकता निर्भय,
यह प्रकृत, स्वयम्भू, ब्रह्मा, अयुतः
इस को भी शक्ति को दे दो।

यहाँ विसर्ग से पूर्व कथन की व्याख्या विसर्ग चिह्न के बाद में की गयी है और प्रत्येक प्रयोग स्वयं में पूर्ण है। जन है जो गीत गाता है। पनडुब्बा मोती लाता है। समिधा आग लगाती है। दीप स्नेह और गर्व भरा है। मधु जो न जाने कितने लम्बे काल के मौन का युग संचय है। गोरस जीवन रूपी कामधेनु का अमृत पय है। अंकुर जो धरा की छाती फाड़कर सूर्य की ओर ताकता है। प्रकृत स्वयम्भू ब्रह्म अयुत जिसे शक्ति को दिया जाता है।

इस कविता की शैल्पिक विशेषता यह भी है इस के अन्तिम बन्ध में तद्भव और संस्कृतनिष्ठ तत्सम शब्दावली का मिश्रित प्रयोग हुआ है। साथ ही दीप की विशेषताओं को व्यक्त करने वाले विशेषणों से अकेले दीपक के विराट अस्तित्व को कवि ने रूपायित किया है :

यह वह विश्वास, नहीं जो अपनी लघुता में भी काँपा,
यह पीड़ा, जिसकी गहराई को स्वयं उसी ने नापा;
कुत्सा, अपमान, अवज्ञा के धुँधुआते कड़वे तम में
यह सदा द्रवित, चिर जागरूक, अनुरक्त नेत्र।
उल्लम्ब–बाहु, यह चिर अखंड अपनापा।
जिज्ञासु, प्रबुद्ध, सदा श्रद्धामय, इस को भी भक्ति को दे दो;

'धुँधुआते कड़वे तम', 'चिर अखंड अपनापा' जैसे तद्भव शब्दों को 'अनुरक्त नेत्र', 'उल्लम्ब बाहु' संस्कृतनिष्ठ तत्सम शब्दों के साथ रखने से अज्ञेय का यह दीप अकेला क्यों है इसे इसके विशेषणों से स्पष्ट किया गया है। दरअसल इसी वैशिष्ट्य के कारण कवि का यह दीप अकेला बेशक है किन्तु एकाकी नहीं है। यह दीप अकेलेपन का नहीं वरन् अपनी अनुपम विशेषताओं के कारण विशिष्ट (अकेला) है। जिसकी पहचान हजारों–लाखों के बीच की जा सकती है।

8.6 'कलगी बाजरे की' कविता का शिल्पगत सौन्दर्य

अज्ञेय हिन्दी के प्रथम कवि–समीक्षक हैं जिन्होंने काव्य–भाषा पर इतनी गहराई से विचार किया है और यह विचार जहाँ पश्चिमी भाषावादी आलोचकों के समकक्ष है वहीं भारतीय काव्य–परम्परा की शब्द–शक्तियों की मूल धारणा के आधार पर संक्रमणकालीन स्थितियों में हिन्दी भाषा को एक नयी अर्थवत्ता देने की पेशकश की गयी है।

इस सन्दर्भ में देखने पर यह अस्वाभाविक नहीं लगता कि अज्ञेय प्रारम्भ से ही नयी प्रतीक–योजना और नये उपमानों की स्थापना पर जोर देते रहे हैं। जिस प्रकार शब्द अधिक प्रयोग से घिस जाता है और उसे नया संस्कार देना पड़ता है वैसा ही प्रतीकों के साथ है क्योंकि शब्द भी अन्ततोगत्वा प्रतीकधर्मी ही होता है कि अज्ञेय ने पुराने प्रतीकों की शक्तिहीनता को पहचाना और नये प्रतीकों की खोज की :

अगर मैं तुमको
ललाती साँझ के नभ की अकेली तारिका
अब नहीं कहता,
या शरद के भोर की नीहार–न्हायी कुंई,
टटकी कली चम्पे की
वग़ैरह, तो
यह नहीं कि मेरा हृदय उथला या कि सूना है
या कि मेरा प्यार मैला है।
बल्कि केवल यही :
ये उपमान मैले हो गये हैं।
देवता इन प्रतीकों के कर गये हैं कूच।
कभी बासन घिसने से मुलम्मा छूट जाता है।

अज्ञेय बोधगम्यता को आवश्यक मानते हैं और उनके सभी प्रतीक बोधगम्य हैं प्रतीकवादी कवियों की तरह बुद्धि का तिरस्कार अज्ञेय के यहाँ नहीं है। नयी प्रतीक–योजना पर बल देने का तात्पर्य प्रतीकवादी हो जाना नहीं क्योंकि युगानुकूल प्रतीक खोजने का कार्य तो सभी समर्थ कवि करते ही आये हैं। अज्ञेय भी इसी पृष्ठभूमि के आधार पर नये प्रतीकों की खोज करना चाहते हैं जो नयी संवेदना और परिवर्तनशील युग को अभिव्यक्ति दे सके। इसी कारण जब वे अपनी प्रेमिका को 'बिछली घास' या 'कलगी छरहरी बाजरे की' कहते हैं तो उसका स्पष्टीकरण भी देते हैं :

आज हम शहरातियों को
पालतू मालंच पर सँवरी जुही के फूल से
सृष्टि के विस्तार का–ऐश्वर्य का–

औदार्य का–
कहीं सच्चा, कहीं प्यारा
एक प्रतीक
या शरद की साँझ के सूने गगन की पीठिका पर
दोलती कलगी अकेली
बाजरे की।

यहाँ यह भी ध्यान देने योग्य है कि अज्ञेय की यह प्रतीक–योजना जहाँ ताज़ा है, वहाँ रूमानी कुहरे से भी मुक्त तथा अधिक स्वस्थ है। वास्तव में यदि काव्य उन्हीं घिसे–पुराने प्रतीकों के आधार पर ही चलता जायेगा तो निश्चय ही मृतवत् हो जायेगा क्योंकि जनमानस के परिवर्तन के साथ–साथ उसकी परिवर्तित संवेदना का पुराने प्रतीक वहन नहीं कर पाते और तब जनमानस उस साहित्य के साथ रागात्मक सम्बन्ध भी स्थापित नहीं कर पाता। इस सम्बन्ध में अज्ञेय का यह वक्तव्य द्रष्टव्य है : ''कोई भी स्वस्थ काव्य–साहित्य प्रतीकों की, नये प्रतीकों की सृष्टि करता है, और जब वैसा करना बन्द कर देता है तब जड़ हो जाता है।

अज्ञेय प्रतीक को काव्य में सत्यान्वेषण का साधन मानते हैं। उलझी हुई, अस्पष्ट एवं रहस्यात्मक अनुभूति को स्पष्ट करने में प्रतीक–योजना जितनी सहायक हो सकती है उतना अन्य काव्यांग नहीं। वास्तव में गहरी एवं व्यापक अनुभूति को जितने प्रभावी स्तर पर प्रतीक–योजना के माध्यम से अभिव्यक्त किया जा सकता है, उतना अन्य प्रकार से नहीं। ज़रूरी यह है कि उस प्रतीक को उस स्तर पर तो प्रतिष्ठित करना ही होता है जहाँ वह सभी का प्रतीक बन सके––संवेद्य हो सके। मात्र चमत्कार–सृष्टि एवं व्यक्ति–वैचित्र्य के लिए प्रतीक–योजना निश्चय ही स्वस्थ मनोवृत्ति नहीं है। अतः यहाँ फिर स्पष्ट हो जाता है कि 'प्रतीकवादी' होना अपने आप में कोई उपलब्धि नहीं है। प्रतीक भी अन्ततोगत्वा साधन ही है।

अज्ञेय की काव्य–भाषा में बोलचाल की शब्दावली को महत्व मिलने के कारण मुहावरेदार शब्दावली का प्रयोग हुआ है। मुहावरों के प्रयोग से कविता सामान्य पाठक में सहजता से उतरती जाती है और भाषा की लाक्षणिकता से अर्थ विशिष्ट हो जाता है। अज्ञेय मुहावरों का ज्यों का त्यों प्रयोग भी करते हैं किन्तु अधिकांशतः काव्य–भाषा का हिस्सा होने के कारण मुहावरों में या तो शब्द विपर्यय हो गया है या वे सर्वथा परिवर्तित हो गये हैं। प्रस्तुत कविता में शब्द विपर्यय का उदाहरण मिलता है :

देवता इन प्रतीकों के कर गये हैं कूच
कभी बासन घिसने से मुलम्मा छूट जाता है

मूल मुहावरा 'कूच करना' तथा 'मुलम्मा छूटना' है किन्तु यहाँ शब्द विपर्यय के कारण ये दोनों पंक्तियाँ नयी कविता के सशक्त हस्ताक्षर के रूप में उद्धृत की जाती रही हैं।

8.7 शब्द और सत्य कविता का शिल्पगत सौन्दर्य

अज्ञेय काव्य–भाषा की परख की कसौटी भी मूलतः शब्द–प्रयोग को ही मानते हैं। वे अपनी मान्यता पर खरे उतरे हैं। शब्द–प्रयोग में जितनी सजगता अज्ञेय ने दिखाई है वह प्रशंसनीय है। उनकी भाषा को शब्द–प्रयोग की कसौटी पर कसें तो हम पाते हैं कि कवि अज्ञेय शब्द और अर्थ के निष्ठावान साधक हैं। वे अनुभूति को अभिव्यक्ति में बदलने के लिए 'आलोक–स्फुरण' की तलाश में रहते हैं ताकि अनुभूति के सत्य को शब्द में उतार सकें। वे पाते हैं कि शब्द और सत्य आपस में एक दूसरे से तने रहते हैं किन्तु उनकी चेष्टा शब्द और सत्य के बीच की दूरी को मिटा देने की रहती है क्योंकि ये दोनों एक–दूसरे से तनकर रहते हैं :

यह नहीं कि मैंने सत्य नहीं पाया था
यह नहीं कि मुझको शब्द अचानक कभी–कभी मिलता है :
दोनों जब–तब सम्मुख आते ही रहते हैं।
प्रश्न यही रहता है :
दोनों जो अपने बीच दीवार बनाये रहते हैं
मैं कब, कैसे उन के अनदेखे
उस में सेंध लगा दूँ
या भर कर विस्फोटक
उसे उड़ा दूँ।

कवि के लिए वही प्रयत्न सार्थक है जिससे शब्द और सत्य या शब्द और अनुभूतियाँ एक दूसरे से जुड़ सकें। शिल्प की सार्थकता भी तभी घटित होती है। इस प्रकार भाषा की प्रयोगशीलता संवेदना एवं शिल्प की प्रयोगशीलता को अधिकांशतः अपने में समेट लेती है। अज्ञेय का यह कथन संगत लगता है : ''जिन्होंने शब्द को नया कुछ नहीं दिया है, वे लीक पीटने वाले से अधिक कुछ नहीं हैं–भले ही जो लीक वे पीट रहे हैं वह अधिक पुरानी न हो। इस प्रकार अज्ञेय भाषा को कसौटी बनाकर काव्य–मूल्यांकन की प्रणाली का प्रवेश हिन्दी में करा देते हैं।

अज्ञेय के लिए भाषा साहित्यकार के मौलिक कर्म की आधारभूत कसौटी हैं। उनके लिए भाषा स्वान्तः अभिव्यक्ति का पर्याय नहीं, बल्कि साहित्यिक व्यक्तित्व के निर्माण का केन्द्र बिन्दु है। उन्होंने अनुभव में भाषा की तलाश की है। उनकी भाषा अपने स्थापन्न या विचलन को सहन नहीं करती। वह क्रमों की अटलबद्धता से जूझती है। वहाँ शब्दों के पर्याय की संभावना नहीं है। कविता निश्चित और निर्धारित शब्दों का चमत्कारपूर्ण प्रयोग नहीं है वरन् अनुभूति की माँग के अनुसार स्वाभाविक और निरायास शब्द योजना से ही काव्य मर्म का काव्य शिल्प के साथ अन्योन्याश्रित सम्बन्ध घटित होता है। जो इस तथ्य को स्वीकार नहीं करते उन कवियों पर व्यंग्य करते हुए अज्ञेय टिप्पणी करते हैं :

कवि जो होंगे हों, जो कुछ करते हैं करें,
प्रयोजन बस मेरा इतना है–

ये दोनों जो
सदा एक–दूसरे से तन कर रहते हैं,
कब, कैसे किस आलोक–स्फुरण में
इन्हें मिला दूँ–
दोनों जो हैं बन्धु, सखा, चिर सहचर मेरे।

स्पष्ट है कि कविता शब्दों की बाजीगरी नहीं वरन् सत्य/अनुभव/संवेदना/काव्य मर्म के साथ शब्द/भाषा/शिल्प का चिर सहचर सम्बन्ध है।

'शब्द और सत्य' दो अनुच्छेदों में विभक्त ऐसी कविता है जिसमें विसर्ग (:) चिह्न का प्रयोग प्रश्न और प्रयोजन की व्याख्या के लिए किया गया है। जाने हुए ही नहीं; पहचाने हुए सत्य की अभिव्यक्ति विशेष प्रकार की भाषा की माँग करती है क्योंकि काव्य में नया अर्थ भरना ही सत्यानुभूति है। यह नया अर्थ कैसे भरा जाये यही कर्म–कर्म की जटिलता है। शब्द भी हैं और सत्य भी लेकिन अनुभूति की भट्टी में तपाकर कंचन किये सत्य के लिए जानी–पहचानी भाषा बहुत काम देने वाली नहीं होती। इसी प्रकार शब्द को केन्द्र में लाने के लिए यथार्थ का तकाजा भी कृत्रिमता से कोसों दूर रहने की ज़रूरत का अहसास कराता है।

8.8 'नदी के द्वीप' कविता का शिल्पगत सौन्दर्य

'हरी घास पर क्षण भर' काव्य–संग्रह नयी कविता का उद्घोष करता है। प्रयोगों के अन्वेषक अज्ञेय इस संग्रह तक आते–आते परिवर्तित संवेदना के अनुरूप शिल्प के नये फ्रेम को बनाने में गतिशील दिखाई देते हैं। प्रस्तुत कविता इस बात का प्रमाण है। परम्परागत अलंकार मोह से यहाँ कवि ने पूरी तरह छुट्टी पा ली है। अनेकधर्मी अर्थ व्यंजना के अनुरूप बिम्ब से प्रतीकों का काम लेना अज्ञेय के काव्य शिल्प को वैशिष्ट्य प्रदान करता है। प्रस्तुत संग्रह में शीर्षक कविता के अतिरिक्त 'कलगी बाजरे की' तथा 'नदी के द्वीप' के अभिव्यंजना–शिल्प ने नयी कविता को सुदृढ़ता प्रदान की। संस्कृतनिष्ठ तत्सम शब्दावली से युक्त 'नदी के द्वीप' कविता एक मॉडल के तौर पर देखी जा सकती है :

हम नहीं कहते कि हम को छोड़कर स्रोतस्विनी बह जाये।
वह हमें आकार देती है।
हमारे कोण, गलियाँ, अन्तरीप, उभार, सैकत–कूल
सब गोलाइयाँ उस की गढ़ी हैं।
माँ है वह। है, इसी से हम बने हैं।

भारतीय परम्परा और आस्था के अनुसार नदी को माँ कवि भी स्वीकार करते हैं। शिशु–जन्म की भाँति वह द्वीप को भी गढ़ती है। नदी और द्वीप के सम्बन्ध को यह कविता ओजपूर्ण शब्दावली में दर्शाती है। यह अभिव्यक्ति स्वयं में विरल है :

हम नदी के पुत्र हैं। बैठे नदी के क्रोड़ में।
वह वृहद् भूखड़ से हम को मिलाती है।
और वह भूखंड अपना पितर है।

संस्कृति और परम्परा की नदी के प्रति इस प्रकार का आदर–भाव संस्कृतनिष्ठ शब्दावली में व्यंजित हुआ है। इस आदर में कमी आने पर नदी के रौद्र रूप की अभिव्यंजना भी ओज गुण के साथ कठोर वर्ण योजना के माध्यम से हुई है :

तुम्हारे आह्लाद से या दूसरों के किसी स्वैराचार से, अतिचार से,
तुम बढ़ो, प्लावन तुम्हारा घरघराता उठे–
यह स्रोतस्विनी ही कर्मनाशा कीर्तिनाशा घोर काल प्रवाहिनी बन जाये–

इस कविता की प्रतीक योजना अनेकार्थ है। नदी प्रतीक है समाज, संस्कृति, परम्परा और गौरवशाली अतीत का जबकि द्वीप व्यक्ति, आधुनिक सभ्यता, वैज्ञानिक बौद्धिक दृष्टिकोण है। इन दोनों के बीच सामंजस्य प्रत्येक युग की अनिवार्यता होती है। जिसे अज्ञेय ने नवीन शैल्पिक विधान से सार्थक किया है।

8.9 अभ्यास हेतु प्रश्न

प्र. 1 शिल्प की अवधारणा स्पष्ट कीजिए।

_____

_____

_____

प्र. 2 शिल्प परिवर्तन के कारण बताइए।

_____

_____

_____

प्र. 3 अज्ञेय के अनुसार काव्य शिल्प में परिवर्तन की अनिवार्यता स्पष्ट कीजिए।

_____

_____

_____

प्र. 4 अज्ञेय की कविता 'यह दीप अकेला' के शिल्पगत सौन्दर्य पर प्रकाश डालिए।

_____

_____

_____

प्र. 5 अज्ञेय की कविता 'कलगी बाजरे की' के शिल्पगत सौन्दर्य पर प्रकाश डालिए।

_____

_____

_____

प्र. 6 अज्ञेय की कविता 'शब्द और सत्य' के शिल्पगत सौन्दर्य पर प्रकाश डालिए।

_____

_____

_____

प्र. 7 अज्ञेय की कविता 'नदी के द्वीप' के शिल्पगत सौन्दर्य पर प्रकाश डालिए।

_____

_____

_____

8.10 संदर्भ ग्रन्थ/सहायक पुस्तकें

1. डॉ. ओमप्रकाश अवस्थी – अज्ञेय कवि
2. डॉ. गंगाप्रसाद विमल – अज्ञेय का रचना–संसार

3. ए. अरविन्दाक्षण – अज्ञेय काव्य में प्राग्बिंब और मिथक

4. प्रभाकर माचवे – अज्ञेय

5. रमेशचन्द्र शाह – अज्ञेयः वागर्थ का वैभव

6. डॉ. रजनी बाला – अज्ञेयः एक कृति के बहाने

7. डॉ. रजनी बाला – अज्ञेयः चिन्तन और काव्य

8. राजेन्द्र प्रसाद – अज्ञेयः कवि और काव्य

9. रामस्वरूप चतुर्वेदी – अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या

10. डॉ. सूरजप्रसाद मिश्र – आधुनिक हिन्दी कविता में व्यक्तित्व अंकन

जनवादी कवि धूमिल

9.0 रूपरेखा

9.1 उद्देश्य

9.2 प्रस्तावना

9.3 धूमिल के रचना संसार की वैचारिकी

9.3.1 धूमिल के काव्य की पृष्ठभूमि

9.3.2 जनवाद और धूमिल

9.4 धूमिल का रचना संसार

9.4.1 धूमिल की कविता का कथ्य (एक)

9.4.2 धूमिल की कविता का कथ्य (दो)

9.5 धूमिल और समकालीन कवि

9.6 सारांश

9.7 कठिन शब्दों के अर्थ

9.8 प्रश्नोत्तर

9.9 संदर्भ पुस्तकें

9.1 उद्देश्य

जनवादी कवि धूमिल हिंदी कविता के सशक्त हस्ताक्षर हैं। इस इकाई में हम धूमिल की कविता की केंद्रीय विशेषता का अध्ययन करेंगे। इस इकाई में हम धूमिल की कविता की अंतर्वस्तु का अध्ययन करेंगे। धूमिल की कविता की अंतर्वस्तु पर आधारित इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप :

- साठोत्तरी कविता से परिचित हो सकेंगे।
- जनवादी कविता को समझ सकेंगे।
- धूमिल की कविता की अंतर्वस्तु से परिचित हो सकेंगे।
- धूमिल के समकालीन कवियों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- धूमिल के रचना संसार को समझ सकेंगे।

9.2 प्रस्तावना

धूमिल हिंदी कविता के महत्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। मुक्तिबोध के बाद की पीढ़ी में धूमिल सर्वाधिक चर्चित कवि रहे हैं। साठोत्तरी कविता में धूमिल अपनी सपाटबयानी के कारण चर्चित रहे हैं। भाषा के मुहावरे और भंगिमा के कारण धूमिल हिंदी कविता में अपनी अलग पहचान रखते हैं। जनवाद अपने पूरे तेवर में धूमिल की कविता में अभिव्यक्त हुआ है। मध्यमवर्ग और सत्ता–व्यवस्था का यथार्थ धूमिल की कविता की केंद्रीय विशेषता है।

9.3 धूमिल के रचना संसार की वैचारिकी

9.3.1 धूमिल के काव्य की पृष्ठभूमि

बंगाल के नक्सलबाड़ी में जनता ने सरकार के खिलाफ एक आंदोलन किया। इस आंदोलन की विशेषता यह थी कि यह स्वतंत्र भारत का पहला बड़ा वैचारिक आंदोलन था। यह आंदोलन सत्ता और व्यवस्था के विरुद्ध , उसके विरोध में निर्मित हुआ था। स्वतंत्रता से पूर्व विरोध का स्वर औपनिवेशिक था किंतु इसमें अपनी ही व्यवस्था के प्रति आक्रोश था, विरोध था। इस आंदोलन के मूल में भूख, अभाव तो था ही, साथ ही गहरी वैचारिक दृष्टि भी थी। जनता की भागीदारी को, उसकी संचेतना को मजबूत करना भी इस आंदोलन का उद्देश्य था। इसीलिए व्यवस्था के प्रति जनता की जागरूकता और आंदोलन इसके केंद्र बने।

नक्सलबाड़ी साहित्यिक आंदोलन न था, राजनीतिक व सामाजिक–सांस्कृतिक आंदोलन था। बावजूद इस आंदोलन ने साहित्य को बहुत दूर तक प्रभावित किया। जनवादी दृष्टि के विकास में नक्सलबाड़ी आंदोलन की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। हिंदी की एक पूरी पीढ़ी राजकमल चौधरी, धूमिल, चंद्रकांत देवताले, मंगलेश डबराल जनवादी लेखकों में मुख्य रहे हैं।

9.3.2 जनवाद और धूमिल

प्रश्न है कि जनवादी दृष्टि क्या है? हर सचेत साहित्य जनता की बात करता है। किंतु जनवादी साहित्य जनता के भीतर चेतना जागृत करने का क्रियाशील माध्यम है। जनवाद अब लेखक के स्तर से व्याख्यायित करने की चीज नहीं रह गयी, अपितु वह जनता के बोध के स्तर पर जाने की चेतना है। जनवाद एक दृष्टि है, जिसके मूल में वैश्विक गति है। जनवादी आलोचक रामनारायण शुक्ल ने लिखा है– 'जनवादी दृष्टि अतीत की अपेक्षा वर्तमान को अधिक महत्व देती है और निश्चित निर्देश में युग को बदलने के प्रति कटिबद्ध होती है'। यानी जनवाद के मूल में है– वर्तमान केंद्रित दृष्टि और युग को बदलना। प्रगतिशील आंदोलन के केंद्र में वैचारिक दृष्टि थी। जनवाद के केंद्र में जनजागरण है। प्रगतिशील आंदोलन के केंद्र में जनता उद्दीपन है, जनवाद के केंद्र में जनता आलंबन...और कुछ स्थितियों में आश्रय। जनवाद के केंद्र में इसीलिए जनता के बीच जाना, उन्हें जागरूक करना और उनकी संवेदना के आलोक में साहित्यिक–सांस्कृतिक सौंदर्यबोध को जागृत करना मुख्य होता है।

हिंदी साहित्य में प्रगतिशील आंदोलन और उसकी वैचारिकता सन 1936 के आसपास शुरू हो गयी थी। प्रेमचंद के बाद के साहित्य पर वैचारिक आग्रह स्पष्ट है। कला में यथार्थ का रूपांतरण महज वैचारिक आवेग तक सीमित नहीं होता। किन्तु बाद के दिनों में प्रगतिशीलता और वैचारिकता को अन्योन्याश्रित समझ लिया गया। यह आधुनिकता की अपनी तर्क–शैली है। 1950–60 तक प्रगतिशील जीवन दृष्टि कोरे वैचारिक नारों में बद्ध हो चली थी। जनवादी आंदोलनों से इस तथ्य को समझा। इसीलिए जनवाद का एक सिरा वैचारिकी में रहता है तो दूसरा सिरा आंदोलन में। सूत्र रूप में समझें तो यह प्रगतिशील दृष्टि के केंद्र में वैचारिक आग्रह है और जनवाद के केंद्र में विचार के साथ ही आंदोलन भी। ऐसा नहीं है कि जनवाद बिना प्रगतिशीलता के आ जाये, किन्तु जनवाद प्रगतिशीलता का अगला कदम अवश्य है। प्रगतिशीलता एक वैचारिक दृष्टि है और जनवाद परिवर्तनमूलक चेतना। जनवादी कलाकार और रचनाकार इसीलिए जीवन की अविराम गतियों का प्रवक्ता होता है और प्रगतिशील कलाकार जीवन की विस्तारक वैचारिक दृष्टि का अन्वेषक।

धूमिल का वैचारिक संबंध नक्सलबाड़ी आंदोलन, एलेन गिन्सबर्ग की बीट पीढ़ी आंदोलन व राजकमल चौधरी के क्रांतिकारी व्यक्तित्व से था। सत्ता–व्यवस्था की असंगतियों की खोज व उन पर व्यंग्यात्मक प्रहार जनवादी साहित्यकार के केंद्र में होता ही है। धूमिल की कविता के केंद्र में भी सत्ता–व्यवस्था के अंतर्विरोध कम नहीं हैं। संसद से सड़क तक धूमिल की कविता का केंद्रीय विषय रहा है।

धूमिल वास्तविक अर्थों में जनवादी कवि रहे हैं। स्वतंत्रता पश्चात भारतीय समाज की दशा और दिशा को इतने तीखे शब्दों में हिंदी कविता में कुछ ही रचनाकार चित्रित कर सके हैं। सत्ता–व्यवस्था की असंगतियों पर प्रहार, जनता का मोहभंग, सामाजिक पाखंड और मध्यम वर्ग के अंतर्विरोधों पर धूमिल की कविता केंद्रित रही है।

9.4 धूमिल का रचना संसार

छात्रों, अभी तक हमने धूमिल की कविता की वैचारिकी का अध्ययन किया। हमने अध्ययन किया कि धूमिल की कविता पर जनवादी आंदोलन का प्रभाव किस रूप में पड़ा है। अब हम धूमिल की कविता के रचना संसार को समझने का प्रयास करेंगे।

9.4.1 धूमिल की कविता का कथ्य

धूमिल साठोत्तरी कविता के सर्वाधिक चर्चित कवियों में से एक रहे हैं। धूमिल की कविता अपने तेवर व मिजाज में दूसरे कवियों से अलग हो जाती है। संसद से सड़क तक (1972 ई), कल सुनना मुझे और सुदामा पांडेय का लोकतंत्र (1983) इनके चर्चित कविता संग्रह हैं। इसके अतिरिक्त 'बांसुरी जल गई' नामक एक गीत संग्रह भी धूमिल ने लिखा था। साथ ही कुछ कहानियाँ और वैचारिक लेख भी धूमिल ने लिखे थे। किन्तु धूमिल की प्रसिद्धि का आधार उनकी कविताएँ ही रही हैं।

धूमिल सत्ता की चालाकी और मध्यम वर्ग के अंतर्विरोधों को साथ–साथ दिखाते चलते हैं। 'जनतंत्र के सूर्योदय में' कविता की कुछ पंक्तियों को देखें–

रक्तपात–
कहीं नहीं होगा
सिर्फ, एक पत्ती टूटेगी।
एक कन्धा झुक जाएगा!
फड़कती भुजाओं और
सिसकती हुई आँखों को
एक साथ लाल फीतों में लपेटकर
वे रख देंगे
काले दराजों के निश्छल एकांत में
जहाँ रात में
संविधान की धाराएँ
नाराज आदमी की परछाई को
देश के नक्शे में
बदल देती हैं '''
अखबारों की धूप और
वनस्पतियों के हरे मुहावरे

तुम्हें तसल्ली देंगे
और जलते हुए जनतंत्र के सूर्योदय में
शरीक होने के लिए
तुम, चुपचाप अपनी दिनचर्या का
पिछला दरवाजा खोलकर
बाहर आ जाओगे
जहाँ घास की नोक पर
थरथराती हुई ओस की एक बूँद
झड़ पड़ने के लिए
तुम्हारी सहमति का इंतजार
कर रही है।

ध्यान से देखें तो कविता दो स्तरों पर बंटी हुई दिखेगी। रक्तपात हुए बिना कंधे का झुक जाना व फड़कती भुजाओं को काले दराजों के निश्चल एकांत में रख देने से कवि ने जनतंत्र की जटिल बनावट का एक संकेत कर दिया है। किन्तु कविता के अंत में जलते हुए जनतंत्र में शामिल भी कर लेते हैं। एक ओर निराशा है तो दूसरी ओर आशा की किरण भी। यह सच्चे जनवादी कवि की पहचान है।

अकाल–दर्शन धूमिल की वैचारिकी को समझने के कुछ सूत्र देती है। कविता की कुछ पंक्तियों को देखें–

.... और सहसा मैंने पाया कि मैं खुद अपने सवालों के/सामने खड़ा हूँ और/उस मुहावरे को समझ गया हूँ/जो आजादी और गांधी के नाम पर चल रहा है/जिससे न भूख मिट रही है, न मौसम/बदल रहा है।/लोग बिलबिला रहे हैं (पेड़ों को नंगा करते हुए)/पत्ते और छाल?/ खा रहे हैं/मर रहे हैं, दान/कर रहे हैं।/....अकाल को सोहर की तरह गा रहे हैं।..../ मैंने जब भी उनसे कहा है देश शासन और राशन.../उन्होंने मुझे टोक दिया है/अक्सर, वे मुझे अपराध के असली मुकाम पर/अँगुली रखने से मना करते हैं/जिनका आधे से ज्यादा शरीर/भेड़ियों ने खा लिया है/वे इस जंगल की सराहना करते हैं।'' अकाल– दर्शन धूमिल की बाद की कविताओं के लिए एक प्रस्थान रचती है। अकाल को सोहर की तरह गाना और भेड़िया तंत्र की सराहना करना जनता की अपनी दिशाहीनता का सूचक ही समझना चाहिए। धूमिल बराबर जनता को सचेत करते चलते हैं। लेकिन कवि अपने (बुद्धिजीवी) वर्ग के अंतर्विरोधों को भी उजागर करना नहीं भूलता। 'एकांत–कथा' की पंक्तियों में वह लिखता है–

मेरी दृष्टि जब भी कभी
जिंदगी के काले कोनों में पड़ी है
मैंने वहां देखी है–

एक अन्धी ढलान
बैलगाड़ियों को पीठ पर लादकर
खड़ी है...
वैसे यह सच है–
जब
सड़कों में होता हूँ
बहसों में होता हूँ
रह–रह चहकता हूँ
लेकिन हर बार वापस घर लौटकर
कमरे के अपने एकांत में
जूते के निकाले हुए पाँव–सा
महकता हूँ।

धूमिल अपने वर्गीय अंतर्विरोधों के प्रति सजग हैं। एक जनवादी कवि के लिए आवश्यक है कि वह अपने (वर्गीय) अंतर्विरोध के प्रति सजग रहे। 'शांति–पाठ' कविता की इन पंक्तियों को देखें–

मेरा गुस्सा–
जनमत की चढ़ी हुई नदी में
एक सड़ा हुआ काठ है।
लन्दन और न्यूयार्क के घुंडीदार तसमों में
डमरू की तरह बजता हुआ मेरा चरित्र
अंग्रेजी का 8 है।

9.4.2 धूमिल की कविता का कथ्य (दो)

धूमिल को मोहभंग का कवि कहा गया है। स्वतंत्रता के बाद युवाओं के सपने तिल–तिल कर मरते जा रहे थे। जनतंत्र एक वाग्विलास की चीज बनकर रह गया था। एक सचेत कवि के रूप में धूमिल अपने कवि–कर्म के प्रति सजग हैं। धूमिल ने पटकथा कविता में लिखा है–

इस तरह जो था उसे मैंने
जी भरकर प्यार किया
और जो नहीं था
उसका इंतजार किया।

किन्तु आशाएं पूरी न हुईं।
फिर कवि लिखता है–
मैं अपनी सम्मोहित बुद्धि के नीचे
उसी लोकनायक को
बार–बार चुनता रहा
जिसके पास हर शंका और
हर सवाल का
एक ही जवाब था
यानी की कोट के बटन–होल में
महकता हुआ एक फूल
गुलाब का।
''''
मैंने भी इस देश को
एक जवान आदमी की
रंगीन इच्छाओं की पूरी गहराई से
प्यार किया था
मगर अब, अतीत में अपना चेहरा
देखने के लिए
शीशे की धूल झाड़ना बेकार है
उसकी पालिश उतर चुकी है
अब उसके दोनों ओर सिर्फ
दीवार है

पटकथा कविता की ये पंक्तियां सपने के टूटने के सूचक हैं। इसी मोहभंग और सचेत दायित्व के बीच धूमिल की अकाल–दर्शन, शान्ति पाठ, शहर में सूर्यास्त, प्रौढ़ शिक्षा, मोचीराम, पतझड़, कवि 1970, मुनासिब कार्यवाई, भाषा की रात और पटकथा कविता को गहराई से पढ़ा जा सकता है। धूमिल की प्रसिद्ध कविता नक्सलबाड़ी में एक सार्थक वक्तव्य रचा गया है–'मुझे अपनी कविताओं के लिए दूसरे प्रजातंत्र की तलाश है'। यह धूमिल की अपनी सचेत दृष्टि की निष्पत्ति है। पटकथा कविता में धूमिल लिखते हैं–'भूख से तनी हुई मुट्ठी का नाम नक्सलबाड़ी है'। कई बार धूमिल की कविता में अतिरेकवादी वक्तव्य भी हमें देखने को मिल जाएंगे। दरअसल धूमिल के यहाँ सार्थक वक्तव्य और अतिरेकवादी कथन दोनों पर्याप्त मात्रा में मिल जायेंगे।

जनवादी चेतना और विचारों का व्यवहार से संबंध न होने के कारण धूमिल कहीं उतेजक तो कहीं निराशावादी हो जाते हैं। बदलने की जरूरत उन्होंने महसूस की, लेकिन उन्होंने देखा कि तमाम लोग उनके विरुद्ध

हैं। इससे कवि को खींझ होती है–'मैंने एक–एक को परख लिया है' मैंने जिसकी पूँछ, उठाई है–'वे सब के सब तिजोरियों के, दुभाषिये हैं, वे वकील हैं, वे वैज्ञानिक हैं, अध्यापक हैं, नेता हैं, दार्शनिक हैं, लेखक हैं, कवि हैं, कलाकार हैं, यानी कि – कानून की भाषा बोलता हुआ, अपराधियों का एक संयुक्त परिवार है। प्रश्न है कि क्या सभी वर्गों को तिजोरियों के दुभाषिये कहा जा सकता है? जनवादी क्रांति के दमन निमित्त मार्शल लॉ और जुलूस मुक्तिबोध की अंधेरे में कविता में भी है। लेकिन मुक्तिबोध क्रांतिकारी नायक की संभावना के प्रति सतर्क हैं। धूमिल की 'पटकथा' कविता का अंत इस वक्तव्य से होता है... 'सारा का सारा देश पहले की तरह आज भी मेरा कारागार है'। इसे वर्गीय पराधीनता और टूटते हुए दिल के एहसास के सिवा और क्या कहा जा सकता है।

9.5 धूमिल के समकालीन कवि

धूमिल साठोत्तरी हिंदी कविता के महत्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। धूमिल के ऊपर उनके समकालीन राजकमल चौधरी का बहुत प्रभाव पड़ा है। राजकमल चौधरी के अतिरिक्त लीलाधर जगूड़ी, चंद्रकांत देवताले, अरुण कमल आदि कवि भी जनवादी धरा के महत्वपूर्ण कवि रहे हैं। किन्तु धूमिल की व्यंग्यधर्मिता इनके पास नहीं है। धूमिल की ताकत उनके भाषा, मुहावरे और व्यंग्य हैं। राजकमल चौधरी की प्रतिभा धूमिल से कम नहीं है, किन्तु राजकमल चौधरी की कविता जटिल बिम्ब विधान से आक्रांत है। इस दृष्टि से धूमिल अपने मुहावरे के कारण अपने समकालीन कवियों से अलग हो जाते हैं।

9.6 सारांश

धूमिल सच्चे अर्थों में एक जनवादी कवि हैं। जनवादी कवि की विशेषता यह होती है कि वह जनपक्षधर होता है। उसकी कविता जनाक्रोश से उपजती ही नहीं है, अपितु जन–आकांक्षा से युक्त भी होती है। जनवादी कवि जीवनानुभवों को अर्थात चेतना की गत्यात्मकता और जटिल आंदोलनों को कलात्मक रूप देता है। वस्तु को अर्थ और रूप देने की प्रक्रिया सपाट नहीं होती, बल्कि पर्याप्त द्वंद्वपूर्ण और जटिल होती है। धूमिल को अपनी कविताओं के लिए दूसरे प्रजातंत्र की तलाश है। आखिर ऐसा क्यों? धूमिल कहते हैं –'...जनतंत्र, जिसकी रोज सैकड़ों बार हत्या होती है और हर बार, वह भेड़ियों की जुबान पर जिंदा हैं (शहर में सूर्यास्त)। धूमिल के लिए मौजूदा जनतंत्र भेड़ियों का तंत्र है, मतलब शोषण और दमन का तंत्र है। धूमिल की कविता इस भेड़ तंत्र में जनतंत्र की तलाश की कविता है।

9.7 कठिन शब्दों के अर्थ

- नक्सलबाड़ी– बंगाल का एक स्थान। नक्सलबाड़ी आंदोलन का उद्‌गम स्थल
- जनवाद–जनता हेतु प्रतिबद्ध विचारधारा
- सम्मोहन–किसी विचार व व्यक्ति के प्रभाव में होना
- सचेत– चेतनायुक्त
- निश्छल– बिना छल के, सरल

9.8 संभावित प्रश्नोत्तरी

प्र. 1 धूमिल की भाषा पर विचार करें।

_____

_____

_____

प्र. 2 जनवादी कवि के रूप में धूमिल की कविता का मूल्यांकन करें।

_____

_____

_____

9.9 संदर्भ पुस्तकें

1. हिंदी साहित्य का आधुनिक इतिहास–बच्चन सिंह
2. संसद से सड़क तक–धूमिल
3. जनवादी समझ और साहित्य–रामनारायण शुक्ल

धूमिल की काव्यकला

10.0 रूपरेखा

10.1 उद्देश्य

10.2 प्रस्तावना

10.3 धूमिल की कविता

10.3.1 धूमिल की कविता के वर्ण्य विषय

10.3.2 धूमिल की कविता–कला के स्रोत

10.4 धूमिल कविता की बिम्ब योजना

10.4.1 धूमिल के बिम्ब

10.4.2 धूमिल द्वारा नए बिम्ब प्रयोग

10.5 धूमिल की प्रतीक योजना व व्यंग्यार्थ

10.5.1 सपाटबयानी और धूमिल

10.5.2 धूमिल कविता की व्यंग्य योजना

10.6 सारांश

10.7 कठिन शब्दों के अर्थ

10.8 संभावित प्रश्न

10.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

10.1 उद्देश्य

यह 10वां आलेख है। इस आलेख को पढ़ने के पश्चात आप–

- कविता और समाज के अंतर्संबंधों को बेहतर ढंग से समझ सकेंगे।
- साठोत्तरी कविता की मुख्य विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे।
- धूमिल की कविता की अंतर्वस्तु को बेहतर ढंग से समझ सकेंगे।
- धूमिल की काव्य कला से परिचित हो सकेंगे।
- धूमिल की कविता की वैचारिक को समझ सकेंगे।

10.2 प्रस्तावना

धूमिल मोहभंग आंदोलन के कवि हैं। यह मोहभंग सत्ता, व्यवस्था और वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था के प्रति है। लेकिन बात इतनी ही नहीं है। धूमिल की कविता मध्यम वर्गीय चरित्र के अवसरवाद को भी बखूबी पकड़ते चलती है। जिस व्यवस्था में व्यक्ति रचनात्मक न हो सके, वह व्यवस्था त्याज्य है। धूमिल बार–बार संसद की भूमिका को रेखांकित करते हैं। कारण यह है कि धूमिल क्रियापरक शक्तियों की भूमिका व उनके इरादे उजागर कर देना चाहते हैं। वह यह दिखाना चाहते हैं कि समाज की क्रियाओं को प्रभावित करने वाली संस्थाएं भी अपनी भूमिका से कट चुकी हैं। इसलिए धूमिल की कविता में निराशा के स्वर भी उजागर हो उठते हैं। ऐसे समय में मजदूर व किसान की श्रमिक चेतना ही एक विश्वास जगाती है। (देखें– मोचीराम व अन्य कविता)।

धूमिल की कविता का स्वर मुख्यतः आवेगात्मक है। आवेगात्मक कविता में कई बार शब्द भदेसपन से युक्त हो जाते हैं। धूमिल कई बार अराजक –से दिखने लगते हैं। बावजूद बड़े स्तर पर उनकी कविता में लोक जीवन के ठोस एवं रचनात्मक चित्र बिखरे पड़े हैं। इन चित्रों को व्यापक संदर्भों से जोड़कर ही धूमिल की कविता के केन्द्रीयभूत तत्वों को समझा जा सकता है।

10.3 धूमिल की कविता

10.3.1 धूमिल की कविता के वर्ण्य विषय

धूमिल की कविताओं के वर्ण्य विषय सत्ता और लोक तक फैले हुए हैं। अकारण नहीं है कि धूमिल की कविताओं का प्रथम संग्रह 'संसद से सड़क तक' शीर्षक से प्रकाशित हुआ है। अकाल– दर्शन, शांति–पाठ, उस औरत की बगल में लेटकर, मोचीराम, प्रौढ़ शिक्षा, मकान, शहर का व्याकरण व शहर में सूर्यास्त, कवि 1970, नक्सलबाड़ी, कुत्ता, मुनासिब कारवाई व पटकथा शीर्षक कविताओं के माध्यम से हम धूमिल के विषय के वैविध्य को समझ सकते

हैं। किंतु इन सब कविताओं में धूमिल का कहना, अप्रस्तुत योजना, व्यंग्य व लोकधर्मी चेतना समान भाव से उपस्थित है। धूमिल की कई कविताएं सत्ता व व्यवस्था के बीच व्यक्ति के निष्क्रिय व क्रियाहीन मनोवृत्ति में ढलते जाने की कहानी कहती हैं। कविता शीर्षक कविता की पंक्ति देखें–

उसे मालूम है कि शब्दों के पीछे
कितने चेहरे नंगे हो चुके हैं
और हत्या अब लोगों की रुचि नहीं–
आदत बन चुकी है

यानी लोगों की मनोवृत्ति अब आदत बन चुकी है। लेकिन इस मनोवृत्ति के कारक तत्वों की तलाश की बजाय धूमिल क्रिया के बाद की उद्घोषणा रचते कवि बनकर सामने आते हैं। इसी कविता की कुछ पंक्तियों को देखें–

एक सम्पूर्ण स्त्री होने के पहले ही
गर्भाधान की क्रिया से गुजरते हुए
उसने जाना कि प्यार
घनी आबादीवाली बस्तियों में
मकान की तलाश है
लगातार बारिश में भींगते हुए
उसने जाना कि हर लड़की
तीसरे गर्भपात के बाद
धर्मशाला हो जाती है और कविता
हर तीसरे पाठ के बाद

इसी प्रकार धूमिल की कुछ उद्घोषणाएं भी बहुचर्चित रही हैं। कुछ उदाहरण देखें–

जनता क्या है?/एक शब्द...सिर्फ एक शब्द है:/कुहरा और कीचड़ और काँच से/बना हुआ.../एक भेड़ है/जो दूसरों की ठंढ के लिए/अपनी पीठ पर/ऊन की फसल ढो रही है'

.....

ऐसा जनतंत्र है जिसमें/जिंदा रहने के लिए/घोड़े और घास को/एक–जैसी छूट है/कैसी विडंबना है/कैसा झूठ है/दरअसल, अपने यहाँ जनतंत्र/एक ऐसा तमाशा ही/जिसकी जान/मदारी की भाषा है।'.....' कायरता के चेहरे पर/सबसे ज़्यादा रक्त है।/जिसके पास थाली है/हर भूखा आदमी/उसके लिए, सबसे भद्दी/गाली है।' . ..... 'मगर बेकार.....मैंने जिसकी पूँछ/उठाई है उसको मादा/पाया है।'

इस प्रकार धूमिल की कविता का स्वर उद्घोषणा मूलक है। उनके वर्ण्य विषय विविध मनोवृत्तियो से युक्त हैं, जिसे वे अपने विशिष्ट कहन शैली में उद्घाटित करते हैं।

10.3.2 धूमिल की कविता–कला के स्रोत

कला और जीवन अविभाज्य हैं। कला का मूल स्रोत जीवन है। जीवन के राग–रेशे से पगी कविता व साहित्य ही सच्ची कला को जन्म देते हैं। हर जनवादी व सच्चा कलाकार जीवन से अपनी ऊर्जा ग्रहण करता है। जीवन की ताकत से हीन कला कोरे अमूर्तन के घेरे में सिमट कर रह जाती हैं। धूमिल की कला का श्रोत भी जन–जीवन है। जन–जीवन की आशा–निराशाएं व उनसे उपजी भंगिमाएं ही धूमिल की कविता को नया तेवर देती हैं।

धूमिल भंगिमा के कवि हैं। यह भंगिमा उन्होंने लोक से ग्रहण की है। इसलिए उनकी कविताओं में लोक भाषा, लोक भंगिमा व लोक के मुहावरे बखूबी प्रयोग में आते हैं। कई बार वे ग्रामीण मन के कवि दिखने लगते हैं। किंतु धूमिल का लोक मन गांव व शहर दोनों में समान रूप से संचरणशील रहा है। धूमिल की लोक भंगिमा को कुछ उदाहरणों के माध्यम से समझा जा सकता है।

... हर लड़की/तीसरे गर्भपात के बाद/धर्मशाला हो जाती है (कविता).... हवा से फड़फड़ाते हुए हिंदुस्तान के नक्शे पर/गाय ने गोबर कर दिया है (बीस साल बाद)। ..... यह जानकर कि तुम्हारी मातृभाषा/उस महरी की तरह है, जो/महाजन के साथ रात–भर/सोने के लिए/एक साड़ी पर राजी है। (जनतंत्र के सूर्योदय में)। .....'बच्चे तो बेकारी के दिनों की बरकत हैं' (अकाल–दर्शन)। ..... युवकों को आत्महत्या के लिए रोजगार दफ्तर भेजकर/पंचवर्षीय योजनाओं की सख्त चट्टान को/कागज से काट रहा हूँ।' (शांति–पाठ)।.... उनकी जांघों की हरकत/पाला लगी मटर की तरह/मुर्झा गयी है उनकी आंखों की सेहत/दीवार खा गई है (उस औरत की बगल में लेटकर).... मासिक धर्म रुकते ही सुहागिन औरतें/सोहर की पंक्तियों का रस/(चमड़े की निर्जनता को गीला करने के लिए)/नए सिरे से सोखने लगती हैं/जांघों में बढ़ती हुई लालच से/भविष्य के रंगीन सपनों को/जोखने लगती हैं (राजकमल चौधरी के लिए ..... बाबूजी! सच कहूँ–मेरी निगाह में/न कोई छोटा है/न कोई बड़ा है/मेरे लिए, हर आदमी एक जोड़ी जूता है/जो मेरे सामने/मरम्मत के लिए खड़ा है (मोचीराम)। ..... इस देश की मिट्टी में/अपने जाँगर का सुख तलाशना/अन्धी लड़की की आंखों में/उससे सहवास का सुख तलाशना है' (पतछड़)। ..... मैं झेंपता हूँ/और धूमिल होने से बचने लगता हूँ/यानि बाहर का 'दुर–दुर'/और भीतर का बिल–बिल होने से/बचने लगता हूँ (कवि 1970) .... वह निहाल–तोंदियल/कैसा मगन है/हुचुर–हुचुर हँस रहा है (भाषा की रात)।

इस प्रकार के ढेरों प्रयोग धूमिल की कविता में भरे पड़े हैं। धूमिल लोकधर्मी चेतना के कवि हैं। वे लोक से ही मुहावरे उठाते हैं और लोक चेतना को ही तीव्र करते हैं।

10.4 धूमिल कविता की बिम्ब योजना

धूमिल की कविता अपनी बिम्बधर्मिता के कारण नवीन व सार्थक रही है। आधुनिक कविता अपने बिम्बों से

पहचानी जाती है। जिस कविता में बिम्ब जितने टटके होंगे, कविता उतनी ही सार्थक होगी। धूमिल के बिम्ब चित्रात्मक भी हैं और वैचारिक भी।

10.4.1 धूमिल के बिम्ब

धूमिल के बिम्ब उनकी वैचारिक व तीखी वर्ग चेतना की निर्मिति हैं। परंपरागत बिंबों के अतिरिक्त धूमिल को बिंबों को ढालने की कला मालूम है। कविता– ''वह किसी गँवार आदमी की ऊब से/पैदा हुई थी और/एक पढ़े–लिखे आदमी के साथ/शहर में चली गई'' या ''उसने जाना कि प्यार/घनी आबादीवाली बस्तियों में/मकान की तलाश है''। इन पंक्तियों को देखें तो आप पाएंगे कि कविता को भी बिम्ब में ढालने की कला धूमिल ही जान सकते हैं। धूमिल के बिम्ब सौंदर्यमूलक ही नहीं होते अपितु उनकी गहरी वैचारिकी से निर्मित होते हैं। कई बार लगता है कि धूमिल के बिम्ब बेतरतीब हैं, किन्तु तब उसे कविता के व्यंग्यार्थ से मिलाना पड़ता है। बीस साल बाद कविता की पंक्ति देखें–''जानवर बनने के लिए कितने सब्र की जरूरत होती है?/और बिना किसी उत्तर के चुपचाप/आगे बढ़ जाता हूँ/क्योंकि आजकल मौसम का मिजाज यूं है/कि खून में उड़ने वाली पत्तियों का पीछा करना/लगभग बेमानी है।'' स्पष्ट है कि धूमिल दृश्य को बिम्ब बनाने की कला जानते हैं। सामान्यतः बिम्ब, दृश्य में ढल जाते हैं, किन्तु धूमिल दृश्य को बिम्ब में ढालने की कला जानते हैं। यह हुनर धूमिल को विशिष्ट बनाता है। जनतंत्र के सूर्योदय में कविता की पंक्ति देखें–''शहर की समूची/पशुता के खिलाफ/गलियों में नंगी घूमती हुई/पागल औरत के श्गाभिन पेट'' की तरह/सड़क के पिछले हिस्से में/छाया रहेगा पीला अंधकार''। इस कविता में भी दृश्य, बिम्ब में ढल रहा है। धूमिल की प्रसिद्ध कविता अकाल–दर्शन की पंक्ति देखें–''वह कौन–सा प्रजातांत्रिक नुस्खा है/कि जिस उम्र में/मेरी माँ का चेहरा/झुर्रियों की झोली बन गया है/उसी उम्र की मेरे पड़ोस की महिला/के चेहरे पर/मेरी प्रेमिका के चेहरे–सा/लोच है''।

समाज की विसंगतियों, विसंगतिपूर्ण व्यवस्था को इंगित करने के लिए धूमिल आसपास के बिम्ब तलाशते हैं या कहें कि आसपास के दृश्यों को बिम्ब में ढालते हैं। यह धूमिल की विशिष्ट कला है। धूमिल कविता में उद्घोषणा करते हैं। ''...कविता/घेराव में/किसी बौखलाए हुए आदमी का/संक्षिप्त एकालाप है।'' या ''...'जनतंत्र'/जिसकी रोज सैकड़ों बार हत्या होती है/और हर बार/वह भेड़ियों की जुबान पर जिंदा है!''। धूमिल की कविता में स्पष्ट कथन बहुत हैं। तय शुदा निष्कर्ष भी। कवि अपने निष्कर्षों को लेकर आश्वस्त है। यह आश्वस्ति धूमिल की कला को बल प्रदान करती है।

10.4.2 धूमिल द्वारा नए बिम्ब प्रयोग

धूमिल की कविता अपने बिम्ब व व्यंग्यार्थ के कारण बहुचर्चित रही है। भ्रमवश कुछ लोगों ने धूमिल की कविता को सपाटबयानी कह दिया है। किंतु सत्य यह है कि धूमिल ने आम जन के मुहावरे, लोकोक्ति को भी नवीन बिम्बों में ढाल दिया है। धूमिल के बिम्ब उनकी वैचारिकी व भंगिमा की उपज हैं। पटकथा कविता की शुरूआत होती है–

जब मैं बाहर आया
मेरे हाथों में
एक कविता थी और दिमाग में
आँतों का एक्स–रे ।
वह काला धब्बा
जो कल तक एक शब्द थाय
खून के अँधेरे में
दवा की शीशी का ट्रेडमार्क
बन गया था।

कविता की उपर्युक्त पंक्तियों को देखते हुए कुछ बातें स्पष्ट होती हैं। हाथ में कविता सृजन का प्रतीक है और दिमाग में आँत का एक्स–रे भूख, बदहाली, अभाव का सूचक। धूमिल एक साथ सृजन व भूख के द्वंद्व को उभारते हैं। यह द्वंद्व का विषय नहीं, यह विरोधाभास है। धूमिल अपनी कविता में दो प्रकार के भिन्न–भिन्न चित्र उभारते चलते हैं। यह धूमिल का विशिष्ट प्रयोग है। पटकथा कविता की ही कुछ पंक्ति देखें–

शब्दों के जंगल में/हम एक–दूसरे को काटते थे/भाषा की खाई को/जुबान से कम और जूतों से/ज़्यादा पाटते थे..... मैंने देखा कि मैदानों में/नदियों की जगह/मरी हुई सांपों की केंचुले बिछी हैं.... जनता क्या है?/एक शब्द...सिर्फ एक शब्द है:/कुहरा और कीचड़ और काँच से/बना हुआ.../एक भेड़ है/जो दूसरों की ठंड के लिए/अपनी पीठ पर/ऊन की फसल ढो रही है।''। स्पष्ट कि धूमिल के बिम्ब केवल सौंदर्य या चित्र–उपस्थापना के लिए नहीं आते, अपितु वे पूरी सामाजिक मनोवृत्ति को एक बिम्ब में उतार देते हैं।

पटकथा कविता की पंक्ति देखें–''वे जिसकी पीठ ठोंकते हैं–/उसके रीढ़ की हड्डी गायब हो जाती है/वे मुस्कराते हैं और/दूसरों की आँख में झपटती हुई प्रतिहिंसा/करवट बदलकर/सो जाती है''। इस प्रकार धूमिल अपने बिंबों से केवल चित्र नहीं बनाते अपितु एक सामाजिक यथार्थ की पूरी संरचना भी निर्मित करते हैं। धूमिल की प्रसिद्ध कविता 'हत्यारी संभावनाओं के नीचे' की निम्न पंक्ति को देखें–

मुर्गे की बाँग पर
सूरज को टाँगकर
सो जाओ
हत्याओं के खिलाफ
ओढ़कर
निकम्मी आदतों का लिहाफ।

प्रस्तुत पंक्तियों को देखें। यहां कवि का उद्देश्य केवल नए बिम्ब की सृष्टि करना ही नहीं है। धूमिल

अपने बिंबों से प्रतिरोध भी करते हैं, व्यंग्य भी करते हैं। धूमिल की एक अन्य कविता 'भाषा की रात' की कुछ पंक्ति देखें–

बजट के अँधेरे में
नींद का
सविनय अवज्ञा आंदोलन
चल रहा है
नारों के पीछे
चीजों का नाटक बनाती हुई
भीड़ में
किसी बेशऊर आदमी का
बैरंग पुतला
चिट्‌ख–चिट्‌ख चल रहा है
उसकी राख
फुटपाथ पर पड़े भिखारी के
खाली कटोरे में
गिर रही है

यहां निर्थक जीवन की विडम्बना को कवि ने बखूबी पकड़ा है। इसी प्रकार धूमिल के ढेरों प्रयोगों को देखा जा सकता है।

10.5 धूमिल की प्रतीक योजना व व्यंग्यार्थ

10.5.1 धूमिल की प्रतीक योजना (सपाटबयानी का भ्रम)

धूमिल की कविता अपनी जटिल व संश्लिष्ट संरचना के कारण पाठकों का ध्यान खींचती रही है। धूमिल काव्य की इस जटिलता या संश्लिष्टता को न समझ पाने के कारण डॉ नामवर सिंह जैसे आलोचक धूमिल को सपाटबयानी का कवि कह देते हैं। सपाटबयानी कह देने से एक भ्रम निर्मित होता है। सपाटबयानी धूमिल की कविता की शैली का एक रूप है। धूमिल की कविता संरचना बेहद जटिल है।

धूमिल की कविता प्रतीक रचते चलती है। वह साधारण से दिखने वाले या रोजमर्रा से लगने वाले दृश्यों में विशिष्ट अर्थ भरते चलती है। हत्या को मनोवृत्ति से आगे ले जाकर संस्कृति में ढालने के प्रयास को धूमिल बखूबी पकड़ते हैं और उसे विशिष्ट प्रतीक बनाते हैं। कविता शीर्षक कविता की पंक्ति देखें–

और हत्या अब लोगों की रुचि नहीं–
आदत बन चुकी है

वह किसी गँवार आदमी की ऊब से
पैदा हुई थी और
एक पढ़े–लिखे आदमी के साथ
शहर में चली गई

धूमिल इस तरह के अनेक प्रयोग करते हैं। कविता को जब वे प्रतीक बनाते हुए कहते हैं– ...कविता/घेराव में/किसी बौखलाए हुए आदमी का/संक्षिप्त एकालाप है'। तब वे कविता को सिर्फ पारिभाषित ही नहीं कर रहे होते हैं, अपितु उसे क्रियापरक अर्थ यानी प्रतीक भी बना रहे होते हैं। अकाल–दर्शन कविता में अकाल को दर्शन में ढालने की मनोवृत्ति किस प्रकार एक प्रतीक बुन रही है, धूमिल उस तरफ ईशारा करते हैं–

उस मुहावरे को समझ गया हूं
जो आजादी व गांधी के नाम पर चल रहा है
जिससे न भूख मिट रही है, न मौसम
बदल रहा है
लोग बिलबिला रहे हैं
पत्ते और छाल
खा रहे हैं
मर रहे हैं, दान
कर रहे हैं।
जलसों–जुलूसों में भीड़ को पूरी ईमानदारी से
हिस्सा ले रहे हैं और
अकाल को सोहर की तरह गा रहे हैं।

यहां आजादी व गांधी कैसे निरर्थक शांति पाठ में रूपांतरित हो गए हैं, इस तथ्य को धूमिल ने बखूबी पकड़ा है। धूमिल इस तरह अनेक प्रतीक रचते हैं। नक्सलबाड़ी उनके यहां विरोध का प्रतीक है। कविता धूमिल के लिए भाषा में आदमी होने की तमीज है। कुत्ता एक मनोवृत्ति है, जो भूख व वहशीपन का प्रतीक है। संसद तेल की घानी बन जाती है, जिसमें आधा–तेल व आधा पानी है। 'रोटी व संसद' कविता में संसद किस प्रकार भूख से खेलने वाली सत्ता का प्रतीक बन गयी है, इस संरचना को धूमिल बखूबी दिखाते हैं। धूमिल मुहावरों को प्रतीक बनाते हैं। शान्ति पाठ धूमिल के यहां अकर्मण्यता का सूचक बन जाता है। इसी प्रकार ढेरों प्रतीक धूमिल की कविता को सार्थकता प्रदान करते हैं।

10.5.2 धूमिल कविता का व्यंग्यार्थ

श्रेष्ठ कविता की एक महत्वपूर्ण पहचान होती है कि वह प्रतीक रच पाने में सक्षम है या नहीं। धूमिल की कविता व्यंग्य को सीधे–सीधे नहीं पकड़ती। नागार्जुन के व्यंग्य सपाट हैं। वे पंक्तियों के आधार पर पकड़े जा सकते

हैं, किन्तु धूमिल के व्यंग्य सम्पूर्ण रचना में विन्यस्त रहता है। वास्तविक कविता या बड़ी कविता के लिए यह जरूरी होता है कि रचना का व्यंग्यार्थ पूरी रचना में विन्यस्त हो। धूमिल की काव्य कला को समझने के लिए उनकी वाक्य संरचना को देखना भी उचित होगा। कविता शीर्षक कविता का समापन इन पंक्तियों से होता है– कविता/घेराव में/किसी बौखलाए हुए आदमी का/संक्षिप्त एकालाप है।''। पूरी कविता जिस तरह से एक निराशा व विडंबना की सृष्टि करती है, उसे कवि समापन तक आते–आते पलट देता है। धूमिल की कविताओं का अंत एक सचेत कवि की टिप्पणी के रूप में होता है। बीस साल बाद कविता का अंत एक प्रश्न से होता है–'क्या आजादी सिर्फ तीन थके हुए रंगों का नाम है'? जाहिर है अंत तक कवि की अपनी सचेत भूमिका स्पष्ट हो जाती है। वैसे धूमिल अपनी कविताओं में सचेत ढंग से उपस्थित हैं। धूमिल की प्रसिद्ध लंबी कविता पटकथा हो या अन्य कविता, कवि स्वयं एक पात्र के रूप में सचेत ढंग से उपस्थित है। कवि की प्रत्यक्ष उपस्थिति या स्वयं एक पात्र की भूमिका में होने के कारण धूमिल अपनी कविता को सचेत मोड़ देने में सक्षम हो सके हैं। 'अकाल–दर्शन' कविता का समापन इन पंक्तियों से होता है–'क्रांति–/यहाँ के असंग लोगों के लिए/किसी अबोध बच्चे के–/हाथों की जूजी है'। यहां भी कवि अपने निष्कर्ष के साथ उपस्थित है। धूमिल की प्रसिद्ध कविता पटकथा भी इसी प्रकार कवि की सचेत टिप्पणियों के कारण विशेष रूप से पाठकों का ध्यान आकर्षित कर सकी है।

धूमिल की सार्थकता उनकी व्यंग्यधर्मी चेतना है, जो उनकी कविताओं में पंक्ति–दर–पंक्ति सामने आती है। धूमिल की एकांत–कथा कविता की शुरुआत इन पंक्तियों से होती है–''मेरे पास उत्तेजित होने के लिए/कुछ भी नहीं है/न कोकशास्त्र की किताबें/न युद्ध की बात/न गद्देदार बिस्तर/न टाँगे, न रात/चाँदनी/कुछ भी नहीं''। इन पंक्तियों में व्यंग्य साथ–साथ चलता है। इसी कविता के समापन की पंक्ति देखें–''जब/सड़कों में होता हूं/बहसों में होता हूँ :/रह–रह चहकता हूँ/लेकिन हर बार वापस घर लौटकर/कमरे के अपने एकांत में/जूते से निकाले गए पाँव–सा/महकता हूँ।''। जीवन का एकांत, व्यक्तिबद्धता, संकीर्णता में दुर्गंध हो तो कोई आश्चर्य नहीं। इस प्रकार धूमिल की कविताओं में व्यंग्य एक टेक के समान आता है।

धूमिल की लंबी कविता पटकथा में व्यंग्य एक टेक की तरह–तरह पूरी रचना में विन्यस्त हो गया है। पटकथा की कुछ पंक्तियों को देखें–

''मैं अपनी सम्मोहित बुद्धि के नीचे/उसी लोकनायक को/बार–बार चुनता रहा/जिसके पास हर शंका और/हर सवाल का/एक ही जवाब था/यानी कि कोट के बटन–होल में/महकता हुआ एक फूल/गुलाब का।''। पंक्तियों के व्यंग्य कितना तीखा है, यह हम आसानी से समझ सकते हैं। इसी कविता की कुछ पंक्ति देखें– विधवाएँ तमगा लूट रही हैं/सधवाएँ मंगल गा रही हैं..... सबसे बड़ा बौद्ध–मठ/बारूद का सबसे बड़ा गोदाम है..... ऐसा जनतंत्र है जिसमें/जिंदा रहने के लिए/घोड़े और घास को/एक–जैसी छूट है..... वे जिसकी पीठ ठोंकते हैं–/उसके रीढ़ की हड्डी गायब हो जाती है..... हां यह सही है कि कुर्सियां वहीं हैं/सिर्फ, टोपियाँ बदल गईं हैं...''मैंने जिसकी पूँछ/उठायी है उसको मादा/पाया है..... तो वहाँ एक ईमानदार आदमी को/अपनी ईमानदारी का/मलाल क्यों है?''। इस प्रकार ढेरों वाक्य धूमिल की कविताओं में भरे पड़े हैं।

धूमिल

10.6 सारांश

धूमिल हिंदी कविता की श्रेष्ठ उपलब्धि हैं। उन्होंने हिंदी कविता को नए मुहावरे प्रदान किये तथा परिष्कृत शैली प्रदान की। धूमिल की बिम्ब संरचना व व्यंग्यधर्मी चेतना इन्हें हिंदी का श्रेष्ठ कवि बनाती है। धूमिल मोहभंग के कवि के रूप में ख्यात हैं। किंतु इस मोहभंग हताशा के साथ ही कविता की मुनासिब कार्रवाई भी है। धूमिल को कविता से आशा है। धूमिल कहते हैं कि– 'वक्त बहुत कम है।' इसलिए कविता पर बहस 'शुरू करो' और शहर को अपनी ओर झुका लो' यानी ऐसे कठिन समय में धूमिल की आशा कविता या आमजन से बनी हुई है। इस प्रकार धूमिल मोहभंग के कवि तो हैं, किन्तु हताशा के कवि नहीं हैं।

धूमिल ने हिंदी कविता को नई भाषा दी। नए बिम्ब दिए व नई भंगिमा दी। धूमिल की संरचना बिम्ब व व्यंग्य के बीच आवाजाही करती है। इसलिए धूमिल को सपाटबयानी के सहारे समझने का प्रयास उचित नहीं है। धूमिल जन मन के कवि हैं।

10.7 कठिन शब्दों के अर्थ

मोहभंग– किसी व्यवस्था, विचार के प्रति आस्था की समाप्ति से उपजी मनःस्थिति

आवेगात्मक– तीव्र ढंग से आया मनोभाव

भदेसपन– ठेठ व ग्रामीण शब्द व मुहावरे की भंगिमा

अविभाज्य– जिसको विभाजित न किया जा सके।

अमूर्तन– वायवी विचार

महरी– घर में कामकाज करने वाली नौकरानी

जाँगर– मेहनत करने का मनोभाव व क्षमता

टटका– ताजा

बेतरतीब– अस्त–व्यस्त

सपाटबयानी– किसी कथन को सीधे–सीधे कहने की शैली

संश्लिष्ट–जटिल

सोहर– संतान उत्पन्न होने पर गाये जाना वाला लोक गीत।

10.8 संभावित प्रश्न

प्र. 1. धूमिल की बिम्ब योजना पर विचार कीजिये।

_____

_____

_____

प्र. 2. धूमिल की काव्य कला पर टिप्पणी कीजिये।

_____

_____

_____

प्र. 3. धूमिल की प्रतीक योजना पर विचार कीजिये।

_____

_____

_____

प्र. 4. धूमिल की भाषा योजना को रेखांकित करें।

_____

_____

_____

प्र. 5. धूमिल मोहभंग के कवि हैं, इस कथन की व्याख्या कीजिये।

_____

_____

_____

प्र. 6. धूमिल काव्य के आधार बिंदुओं को रेखांकित कीजिये।

_____

_____

_____

10.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. संसद से सड़क तक–धूमिल
2. जनवादी समझ और साहित्य– शुक्ल, रामनारायण

निर्धारित कविताओं का संवेदनागत और शिल्पगत वैशिष्ट्य

11.0 रूपरेखा

11.1 उद्देश्य

11.2 प्रस्तावना

11.3 मुनासिब कारवाई : कविता

- 11.3.1 मुनासिब कारवाही की व्याख्या
- 11.3.2 मुनासिब कारवाई : आलोचनात्मक संदर्भ
- 11.3.3 मुनासिब कारवाई : संवेदनागत एवं शिल्पगत वैशिष्ट्य

11.4 मोचीराम कविता

- 11.4.1 मोचीराम कविता की व्याख्या
- 11.4.2 मोचीराम कविता : आलोचनात्मक संदर्भ
- 11.4.3 मोचीराम : संवेदनागत एवं शिल्पगत वैशिष्ट्य

11.5 नक्सलबाड़ी कविता

- 11.5.1 नक्सलबाड़ी कविता की व्याख्या
- 11.5.2 नक्सलबाड़ी कविता : आलोचनात्मक संदर्भ
- 11.5.3 नक्सलबाड़ी : संवेदनागत एवं शिल्पगत वैशिष्ट्य

11.6 सारांश

11.7 कठिन शब्दों के अर्थ

11.8 संभावित प्रश्न

11.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

11.1 उद्देश्य

धूमिल की चयनित कविताओं (मुनासिब कारवाई, मोचीराम व नक्सलबाड़ी) के माध्यम से हम धूमिल की कविता को समझने के कुछ महत्वपूर्ण सूत्र प्राप्त कर सकते हैं। इस आलेख को पढ़ने के पश्चात हम–

- धूमिल की कविताओं में आये उनके लोकतांत्रिक कवि रूप को समझ सकते हैं।
- धूमिल की मुनासिब कारवाई कविता के भावार्थ को समझ सकते हैं। इस कविता में धूमिल द्वारा दी गयी कविता की परिभाषा को भी हम इस कविता के माध्यम से ग्रहण कर सकते हैं।
- मोचीराम कविता की अर्थ व्यंजना को समझ सकेंगे।
- नक्सलबाड़ी कविता की वैचारिकी से परिचित हो सकेंगे।
- धूमिल की काव्य कला से परिचित हो सकेंगे।
- धूमिल की कविता में व्यक्त मुहावरे से परिचित हो सकेंगे।

11.2 प्रस्तावना

धूमिल साठोत्तरी कविता के महत्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। संसद से सड़क तक, कल सुनना मुझे और सुदामा पांडेय का लोकतंत्र धूमिल के कविता संग्रह हैं। किंतु धूमिल की कीर्ति का आधार संसद से सड़क तक (1972) है। इस संग्रह में धूमिल की चर्चित व महत्वपूर्ण कविताएँ संग्रहित हैं।

इस आलेख संख्या में धूमिल की तीन कविताएँ चयनित हैं। मुनासिब कारवाई, मोचीराम व नक्सलबाड़ी को इस आलेख में रखा गया है। तीनों कविताएँ धूमिल की चर्चित कविताएँ रही हैं। मुनासिब कारवाई में धूमिल कविता की दो परिभाषाएँ देते हैं। 'कविता शब्दों की अदालत में मुजरिम के कटघरे में खड़े बेकसूर आदमी का हलफनामा है'। तथा 'कविता भाषा में आदमी होने की तमीज है'।

मोचीराम कविता धूमिल की वर्गचेतना की प्रतिनिधि कविताओं में से एक है। मोचीराम यहां पेशे व जाति से आगे एक वर्ग व एक चेतना का प्रतीक बन जाता है। इसी प्रकार नक्सलबाड़ी धूमिल की वैचारिक व आंदोलनधर्मी कविता है। नक्सलबाड़ी भूमि सुधार व भूमि अधिग्रहण के द्वंद्व पर रचित कविता है। इन कविताओं को पढ़कर हम धूमिल के क्रांतिकारी वर्ग चेतस कवि रूप को समझने की दृष्टि प्राप्त कर सकते हैं।

11.3 मुनासिब कारवाई

अकेला कवि कठघरा होता है।
इससे पहले कि 'वह' तुम्हें

सिलसिले से काटकर अलग कर दे
कविता पर
बहस शुरू करो
और शहर को अपनी ओर
झुका लो।
यह सबूत के लिए है।
–रंगीन पत्रिकाओं में चरित्र–
पोंकता हुआ ईमान,
जो दाँतों में फँसी हुई भाषा की तिकड़म है,
–टूटे हुए बकलस का खुफिया तनाव,
–एक बातूनी घड़ी,
–वकील का लबार चोगा,
–एक डरपोक चाकू
जिसका फल कानून की जद से
सूत–भर कम है,

शिनाख्त की इन तमाम चीजों के साथ
अपने लोगों की भीड़ में
भाषा को धीरे से धँसाओ।
बिना किसी घाव के शब्द
बाहर आ जाएँगे।
जैसे परखी में बोरे का अनाज
चला आता है।
उन्हें परखो।
बाट की जगह अपना चेहरा रख दो।

यह न्याय के लिए है।
क्योंकि जिसमें थोड़ा–सा भी विवेक है,
वह जानता है कि आजकल
शहर कोतवाल की नीयत
और हथकड़ी का नंबर एक है।

और अब देखो कि काँटे का रुख
किधर है।
कल तक वह उधर था
जिधर आढ़तिया था।
जिधर चुंगी का मुंशी बैठता था।
कल तक–
नगरपिता का सिर विरोध में
हिलता था और तुम पाते थे–
कि कविता का अर्थ
बदल गया है।

मगर अब चीजों के गलत होने का
पता चल गया है :
एक रिश्ता गलत समय देने लगा है,
उसकी मरम्मत के लिए
घड़ीसाज की दुकान पर जाना
सरासर भूल है।
तुम्हारे जिगरी दोस्त की कमर
वक्त से पहले ही झुक गई है
उसके लिए–
बढ़ई के आरी और बसूले से
लड़ना फिजूल है।
क्योंकि गलत होने की जड़
न घड़ीसाज की दुकान में है,
न बढ़ई के बसूले में
और न आरी में है
बल्कि वह इस समझदारी में है
कि वित्त मंत्री की ऐनक का
कौन–सा शीशा कितना मोटा है,
और विपक्ष की बेंच पर बैठे हुए

नेता के भाइयों के नाम
सस्ते गल्ले की कितनी दुकानों का
कोटा है।

और जो चरित्रहीन है
उसकी रसोई में पकने वाला चावल
कितना महीन है।
इस वक्त सच्चाई को जानना
विरोध में होना है।
और यहीं से–
अपराधियों की नाक के ठीक नीचे
कविता पर
बहस शुरू होती है।
चेहरे से चेहरा बटोरते हुए
एक तीखा स्वर
सवाल पर सवाल करता है।
सन्नाटा टूटता है।
गूँगे के मुँह से उत्तर फूटता है।
'कविता क्या है?
कोई पहनावा है?
कुर्ता–पाजामा है?'
'ना, भाई, ना,
कविता–
शब्दों की अदालत में
मुजरिम के कठघरे में खड़े बेकसूर आदमी का
हलफनामा है।'
'क्या यह व्यक्तित्व बनाने की–
चरित्र चमकाने की–
खाने–कमाने की–
चीज है?'

'ना, भाई, ना,
कविता
भाषा में
आदमी होने की तमीज है।'

इस तरह सवाल और जवाब की मंजिलें–
तय करके
थका–हारा सच–
एक दिन अपने खोए हुए चेहरे में
वापस आता है,
और अचानक, एक नदारद–सा आदमी
समूचे शहर की जुबान बन जाता है।

लेकिन मैंने कहा–
अकेला कवि कठघरा होता है।
साथ ही, मुझे डर है कि 'वह' आदमी
तुम्हें सिलसिले से काटकर
अलग कर देने पर तुला है,
जो आदमी के भेस में
शातिर दरिंदा है,
जो हाथों और पैरों से पंगु हो चुका है
मगर नाखून में जिंदा है,
जिसने विरोध का अक्षर–अक्षर
अपने पक्ष में तोड़ लिया है।
जो जानता है कि अकेला आदमी झूठ होता है।
जिसके मन में पाप छाया हुआ है।
जो आज अघाया हुआ है,
और कल भी–
जिसकी रोटी सुरक्षित है।
'वह' तुम्हें अकेला कर देने पर
तुला है।

वक्त बहुत कम है।
इसलिए कविता पर बहस
शुरू करो
और शहर को अपनी ओर झुका लो
क्योंकि असली अपराधी का
नाम लेने के लिए
कविता, सिर्फ उतनी ही देर तक सुरक्षित है
जितनी देर, कीमा होने से पहले,
कसाई के ठीहे और तनी हुई गँड़ास के बीच
बोटी सुरक्षित है।

11.3.1 मुनासिब कार्यवाई : व्याख्या

मुनासिब कारवाई धूमिल की चर्चित कविता है। कविता में व्यंग्यात्मक तेवर भी है और कवि का अपना घोषणापत्र भी। कविता का संदेश इस तथ्य में निहित है कि अकेला कवि कटघरे के समान हो जाता है। कविता और व्यक्ति की मुक्ति समाज से जुड़कर ही सम्भव हो सकती है।

मुनासिब कार्रवाई में धूमिल कहते हैं कि अकेला कवि कटघरा होता है, क्योंकि वह समाज की गति में अपने योग देने की भूमिका से कटकर अलग हो जाता है। समाज से कट जाने से पूर्व कविता पर बहस आवश्यक है, यानी प्रतिरोध व एका के रास्ते पर चलना जरूरी हो जाता है।

रंगीन पत्रिकाओं के लुभावने चित्र व चरित्र हमारे सामने खोखले व टूटे ईमान से युक्त व्यक्तित्व ही खड़ा कर पा रहे हैं। ये दांत में फंसी हुई भाषा के समान हैं, जो अपुष्ट व अबूझ हैं, जो अपने अर्थ को खोते जा रहे हैं। खुफिया तनाव, घड़ी या समय की गति, वकील का लबादा यानी न्याय की पक्षधरता व अपने हिस्से की चीज को अलग करने का विवेक खत्म होता जा रहा है। ये अपना अर्थ खोते जा रहे हैं। ऐसे भयावह समय में शिनाख्त के लिए जरूरी है कि (सत्य–असत्य के विवेक के लिए) शब्द का प्रयोग सावधानी से करें ,सतर्कता से करें। बोरे के अनाज को तोलते हुए बाट की जगह किसान का चेहरा रख कर देखो। किसान का चेहरा, भाव बोरे से ज़्यादा वजनदार है। क्योंकि उसमें उसका श्रम सम्मिलित है तथा उसकी आशाएं भीं।

कविता में न्याय की पकड़ आवश्यक है। शहर के कोतवाल की नीयत यांत्रिक है। उसका न्याय बदल गया है। अब वह न्याय की जगह अन्याय के साथ खड़ा है। न्याय अब आम आदमी से हटकर आढ़तियों (न्याय के रसूखदार) के पास चला गया है। लेकिन अब कविता के अर्थ को बदलने की जरूरत है। समय अब बदल गया है। समय अब स्थूल नहीं रह गया है। समय को ठीक करने के लिए अब घड़ीसाज के पास जाने की जरूरत नहीं हैं।

युवा बोध से हीन समय में पुराने औजार भी बेकार हो चले हैं। आज की तथाकथित समझदारी तो वित्त मंत्री के ऐनक के शीशे के मोटे–पतले की माप करने व नेता के भाइयों के नाम कोटे की संख्या पता लगाने में व्यक्त हो रही है। अर्थात निरर्थक कार्यों में (अरचनात्मक) लिप्त होकर भी आज व्यक्ति समझदार बना हुआ है।

धूमिल कहते हैं कि चरित्रहीन के घर का चावल ही सबसे महीन है अर्थात चरित्रहीन व्यक्ति की बातें ही सबसे ज्यादा असरकारक व रहस्यमय हैं। उनमें समाज की बारीकियां ज्यादा हैं। ऐसी स्थिति में, ऐसे आपराधिक समय में कविता पर बहस जरूरी हो जाती है। लेकिन कविता गूंगे के मुंह से नहीं फूटती, और यदि फूटती भी है तो वह उसके बाह्य रूपों को ही बता सकती है। फिर कविता क्या है? कवि कहता है कि कविता तो परेशान, संत्रस्त आम आदमी, जो मुजरिम की भांति कटघरे में खड़ा है, बेकसूर आम आदमी का हलफनामा या बयाननामा है। यानी घोषणापत्र है। आम आदमी की सच्ची भावनाएं ही कविता में व्यक्त दस्तावेज हैं। लेकिन यह समझना भूल होगी कि कविता का काम चरित्र बनाना या कहें कि चमकाना है। नहीं, कविता तो भाषा में आदमी बनने की तमीज है। यानी भाषा में मनुष्य बनने की विधा, अनुशासन ही कविता है। इस प्रकार संघर्षरत आदमी अपने पुराने तेवर में लौटता है और अपने से खोया व्यक्ति शहर की संभावना बन उठता है। लेकिन सावधान रहने की आवश्यकता है, क्योंकि वह चालक व धूर्त आदमी , सच्चे आम आदमी को सामाजिक गति से काटकर अलग करने पर तुला हुआ है। वह व्यक्ति आदमी के भेष में दरिंदा है, क्योंकि उसके हाथ–पैर तो पंगु हो चुके हैं अर्थात वह श्रम से कट चुका है, किन्तु उसके नाखून सुरक्षित हैं अर्थात उसके अंदर की पशुता, हिंसा जीवित है।उसने प्रतिरोध में खड़े व्यक्ति को तोड़ लिया है। वह व्यक्ति सुख से अघाया हुआ है और भौतिक सुविधाओं से युक्त है। इसीलिए वह तुम्हें अकेला कर देने के षड्यंत्र में लिप्त है, क्योंकि उसे पता है कि अकेले आदमी की बातों को कोई सच नहीं मानता और न उसमें बल होता है।

कवि कहता है कि वक्त कम है। इसलिए निर्रथक कामों में उसे मत गंवाओ। चूंकि वक्त कम है, इसलिए कविता पर बहस आवश्यक है। कविता ही सत्य तक पहुंचने की अंतिम आस है। वक्त कम है और ऐसे समय में कविता की ताकत तभी तक सुरक्षित है, जब तक कि वह अपने वार को तीव्र ढंग से ,सही समय से कर दे रही है। जैसे कसाई के गंडासे से बोटी का कटना आवश्यक हो उठता है, वैसे ही कविता यदि सही समय पर अपना कार्य करे तो वह सामाजिक समस्याओं को हल करने की दिशा में आवश्यक दस्तावेज बन सकती है।

11.3.2 मुनासिब कार्रवाई : आलोचनात्मक संदर्भ

मुनासिब कार्रवाई धूमिल की सचेत बौद्धिकी को व्यक्त करती अप्रतिम कविता है। इस कविता में कवि ने सच्चे प्रगतिशील कविकर्म का परिचय दिया है। आलोच्य कविता में कवि ने अनेक महत्वपूर्ण बिंदुओं पर प्रकाश डाला है–

- धूमिल ने संकेत किया है कि कवि व कविता की मुक्ति समाज के साथ जुड़ कर ही सम्भव हो सकती है। व्यक्ति व कवि अकेले होकर कटघरे में हो जाता है। इस अकेलेपन से मुक्ति समाज के साथ

मिलकर व कविता पर बहस शुरू कर ही सम्भव हो सकती है। कविता पर बहस का अर्थ है कि सामाजिक यथार्थ को संवेदनिक यथार्थ में बदलने की प्रक्रिया में सम्मिलित हो जाना।

- धूमिल कहते हैं कि भाषा का सचेत प्रयोग आवश्यक है। भाषा के सचेत प्रयोग का अर्थ है कि सत्य बिना अराजक ढंग से अभिव्यक्त हुए बिना भी प्रकट हो जाये।
- कवि कहता है कि यथार्थ को प्रकट करने के लिए नए औजारों की जरूरत है। पुराने औजारों से यह सत्य प्रकट नहीं हो सकता। आज की व्यावहारिक सच्चाई सत्य तक पहुंचाने में नाकाफी है। क्योंकि वह मूल यथार्थ तक नहीं पहुंच पा रही।
- आज के कठिन समय में कविता पर बहस आवश्यक हो उठती है। लेकिन कविता कोई स्थूल चीज नहीं है। बल्कि कविता मुजरिम के कटघरे में खड़े व्यक्ति का हलफनामा है। यानी कविता ही आम आदमी का घोषणापत्र है।
- कविता भाषा में आदमी होने की तमीज है। धूमिल की यह परिभाषा हिंदी की सर्वाधिक लोकप्रिय परिभाषाओं में से एक है। कविता आदमी को परिष्कृत करती है। कविता मनुष्य के अंदर परिवर्तन उपस्थित करती है। बिना आंतरिक परिवर्तन के मनुष्यता जीवित नहीं रह सकती। कविता यही कार्य किया करती है। इसीलिए कवि ने कविता को आदमी होने की तमीज कहा है।
- कवि और कविता की मुक्ति अकेले में संभव नहीं है। अकेला कवि कटघरा होता है। कवि व आम इंसान को अलग–थलग करने के लिए सत्ता व वर्चस्ववादी ताकतें प्रयासरत हैं। वे श्रम से अलग–थलग हैं, किंतु अपनी हैवानियत में जिंदा हैं। व्यवस्था अपनी सुविधा के लिए आम व्यक्ति को अकेला करने के लिए निरंतर सक्रिय है।
- कविता ही यथार्थ के उद्घाटन में सक्षम है। किंतु उसके सामने चुनौती बड़ी है। कविता का काम ज़्यादा सूक्ष्म है। कविता सत्य तक तभी पहुंच सकती है जब वह समय के यथार्थ को तीव्र ढंग से अभिव्यक्त कर सके।

11.3.3 मुनासिब कारवाई : संवेदनागत एवं शिल्पगत वैशिष्ट्य

मुनासिब कारवाई धूमिल की प्रतिरोधी चेतना को दर्ज करती महत्वपूर्ण कविता है। यह कविता अपने कथ्य भंगिमा और व्यंग्य के कारण विशिष्ट रही है। संक्षेप में कविता की संवेदना को निम्न बिंदुओं के आलोक में समझा जा सकता है–

- मनुष्य के अलगावपन व अकेलेपन को तोड़ने के लिए कविता (भाव, संवेदना) पर बातचीत ही सार्थक है। कविता पर बहस करना संवेदना को बचाये रखने की एक सार्थक पहल है।

- मुनासिब कारवाई भाषा के बचाव और क्रिया की कविता है। भाषा द्वारा क्रिया की उत्पत्ति इसका एक अहम पड़ाव है। भाषा को धँसाने का अर्थ संवेदना को जाग्रत करने से है।
- कविता के अर्थ बदलने को मनुष्य की नियति के बदलने के अर्थ में देखा जा सकता है। मनुष्य का सामान्य व्यवहार भी बदल चुका है। ऐसे में कविता उस बदलते व्यवहार की निरीक्षिका के तौर पर सामने आती है।
- समाज की विसंगतिपूर्ण स्थितियों को पकड़ने के लिए कविता पर बहस शुरू होनी आवश्यक है। समाज की विसंगतिपूर्ण स्थितियों को कविता ही उद्घाटित कर सकती है। धूमिल कविता में कहते हैं कि– 'कविता–'शब्दों की अदालत में' मुजरिम के कटघरे में खड़े बेकसूर आदमी का 'हलफनामा है'। यह पंक्ति कविता को प्रतिबद्ध कर्म से जोड़ती है।
- धूमिल अकेले व्यक्ति और कवि को कटघरा मानते हैं। समाज में बदलाव मनुष्य की सामूहिक क्रियाशक्तियों से जुट कर ही सम्भव हो सकता है।
- धूमिल इस कविता में मनुष्य की पाशविक वृत्तियों को बराबर उजागर करते चलते हैं। बिना इस पहचान के मनुष्य के मूल सत्य तक नहीं पहुंचा जा सकता। 'मुनासिब कारवाई' मनुष्य के पाशविक वृत्तियों की पहचान करती चलती है।
- कविता, भाषा में आदमी होने की तमीज है। यह वाक्य धूमिल की अपनी रचनात्मक समस्या है।
- 'मुनासिब कारवाई' ढहते जाते समाज में कविता द्वारा रचनात्मक प्रतिरोध की कविता है।

शिल्पगत वैशिष्ट्य

मुनासिब कारवाई कथन की भंगिमा के कारण तो चर्चित रही ही है, साथ ही शिल्पगत वैशिष्ट्य के कारण भी महत्वपूर्ण रही है। कविता का शिल्प जटिल है। संक्षेप में कविता के शिल्प पर कुछ महत्वपूर्ण बातें इस प्रकार हैं–

- कविता का शिल्प जटिल है। कहीं कविता वर्णात्मक हो उठती है तो कहीं निष्कर्षात्मक।
- शिल्प की दृष्टि से कविता की जटिलता का कारण यह रहा है कि कविता में निष्कर्ष व वर्णन की क्रमिक पद्धति नहीं रखी गयी है।
- कविता में लोक भाषा की रवानगी तो मिलती ही है। साथ ही प्रतीक, बिंबों में भी लोक तत्व की बहुलता है। यही कारण है कि कविता में भदेस के तत्व बहुतायत हैं।
- कविता वर्णात्मक तो है, किन्तु बीच–बीच में संवाद के प्रयोग भी बहुतायत हैं। संवादात्मक शैली के प्रयोग के कारण कविता में बहस व तर्क के लिए पर्याप्त गुंजाइश रही है। अतः कविता अपने शिल्प वैशिष्ट्य में आकर्षक व महत्वपूर्ण रही है।

11.4 मोचीराम

राँपी से उठी हुई आँखों ने मुझे
क्षण–भर टटोला
और फिर
जैसे पतियाये हुये स्वर में
वह हँसते हुये बोला–
बाबूजी सच कहूँ–मेरी निगाह में
न कोई छोटा है
न कोई बड़ा है
मेरे लिये,हर आदमी एक जोड़ी जूता है
जो मेरे सामने
मरम्मत के लिये खड़ा है।

और असल बात तो यह है
कि वह चाहे जो है
जैसा है, जहाँ कहीं है
आजकल
कोई आदमी जूते की नाप से
बाहर नहीं है
फिर भी मुझे ख्याल है रहता है
कि पेशेवर हाथों और फटे जूतों के बीच
कहीं न कहीं एक आदमी है
जिस पर टाँके पड़ते हैं,
जो जूते से झाँकती हुई अँगुली की चोट छाती पर
हथौड़े की तरह सहता है।

यहाँ तरह–तरह के जूते आते हैं
और आदमी की अलग–अलग 'नवैयत'
बतलाते हैं
सबकी अपनी–अपनी शक्ल है

अपनी–अपनी शैली है
मसलन एक जूता है:
जूता क्या है–चकतियों की थैली है
इसे एक आदमी पहनता है
जिसे चेचक ने चुग लिया है
उस पर उम्मीद को तरह देती हुई हँसी है
जैसे 'टेलीफून' के खम्भे पर
कोई पतंग फँसी है
और खड़खड़ा रही है।

'बाबूजी! इस पर पैसा क्यों फूँकते हो?'
मैं कहना चाहता हूँ
मगर मेरी आवाज लड़खड़ा रही है
मैं महसूस करता हूँ–भीतर से
एक आवाज आती है–'कैसे आदमी हो
अपनी जाति पर थूकते हो।'
आप यकीन करें, उस समय
मैं चकतियों की जगह आँखें टाँकता हूँ
और पेशे में पड़े हुये आदमी को
बड़ी मुश्किल से निबाहता हूँ।

एक जूता और है जिससे पैर को
'नाँघकर' एक आदमी निकलता है
सैर को
न वह अक्लमन्द है
न वक्त का पाबन्द है
उसकी आँखों में लालच है
हाथों में घड़ी है
उसे जाना कहीं नहीं है
मगर चेहरे पर
बड़ी हड़बड़ी है

वह कोई बनिया है
या बिसाती है
मगर रोब ऐसा कि हिटलर का नाती है
'इशे बाँद्धो, उशे काट्टो, हियाँ ठोक्को, वहाँ पीट्टो
घिस्सा दो, अइशा चमकाओ, जूत्ते को ऐना बनाओ
...ओफ्फ! बड़ी गर्मी है'
रुमाल से हवा करता है,
मौसम के नाम पर बिसूरता है
सड़क पर 'आतियों–जातियों' को
बानर की तरह घूरता है
गरज यह कि घण्टे भर खटवाता है
मगर नामा देते वक्त
साफ 'नट' जाता है
शरीफों को लूटते हो' वह गुर्राता है
और कुछ सिक्के फेंककर
आगे बढ़ जाता है
अचानक चिंहुककर सड़क से उछलता है
और पटरी पर चढ़ जाता है
चोट जब पेशे पर पड़ती है
तो कहीं–न–कहीं एक चोर कील
दबी रह जाती है
जो मौका पाकर उभरती है
और अँगुली में गड़ती है।

मगर इसका मतलब यह नहीं है
कि मुझे कोई गलतफहमी है
मुझे हर वक्त यह खयाल रहता है कि जूते
और पेशे के बीच
कहीं–न–कहीं एक अदद आदमी है
जिस पर टाँके पड़ते हैं
जो जूते से झाँकती हुई अँगुली की चोट

छाती पर
हथौड़े की तरह सहता है
और बाबूजी! असल बात तो यह है कि जिन्दा रहने के पीछे
अगर सही तर्क नहीं है
तो रामनामी बेंचकर या रण्डियों की
दलाली करके रोजी कमाने में
कोई फर्क नहीं है
और यही वह जगह है जहाँ हर आदमी
अपने पेशे से छूटकर
भीड़ का टमकता हुआ हिस्सा बन जाता है
सभी लोगों की तरह
भाषा उसे काटती है
मौसम सताता है
अब आप इस बसन्त को ही लो,
यह दिन को ताँत की तरह तानता है
पेड़ों पर लाल–लाल पत्तों के हजारों सुखतल्ले
धूप में, सीझने के लिये लटकाता है
सच कहता हूँ–उस समय
राँपी की मूठ को हाथ में सँभालना
मुश्किल हो जाता है
आँख कहीं जाती है
हाथ कहीं जाता है
मन किसी झुँझलाये हुये बच्चे–सा
काम पर आने से बार–बार इन्कार करता है
लगता है कि चमड़े की शराफत के पीछे
कोई जंगल है जो आदमी पर
पेड़ से वार करता है
और यह चौकने की नहीं, सोचने की बात है
मगर जो जिन्दगी को किताब से नापता है
जो असलियत और अनुभव के बीच
खून के किसी कमजात मौके पर कायर है

वह बड़ी आसानी से कह सकता है
कि यार! तू मोची नहीं, शायर है
असल में वह एक दिलचस्प गलतफहमी का
शिकार है
जो वह सोचता कि पेशा एक जाति है
और भाषा पर
आदमी का नहीं, किसी जाति का अधिकार है
जबकि असलियत यह है कि आग
सबको जलाती है सच्चाई
सबसे होकर गुजरती है
कुछ हैं जिन्हें शब्द मिल चुके हैं
कुछ हैं जो अक्षरों के आगे अन्धे हैं
वे हर अन्याय को चुपचाप सहते हैं
और पेट की आग से डरते हैं
जबकि मैं जानता हूँ कि 'इन्कार से भरी हुई एक चीख'
और 'एक समझदार चुप'
दोनों का मतलब एक है–
भविष्य गढ़ने में ,'चुप' और 'चीख'
अपनी–अपनी जगह एक ही किस्म से
अपना–अपना फर्ज अदा करते हैं।

11.4.1 मोचीराम कविता की व्याख्या

मोचीराम धूमिल की चर्चित कविता है। यह कविता कवि और सचेतन अनुभवी मोचीराम के मध्य संवाद पर आधारित है। मोचीराम के संवाद के माध्यम से कवि ने अपनी लोकपक्षरता सिद्ध की है। मोचीराम श्रमशील वर्गचेतना का प्रतीक है।

कविता में मोचीराम कवि से संवाद करने को उत्सुक होते हुए कहता है– मोचीराम ने रांपी से ऊपर उठाते हुए एक क्षण को मेरा चेहरा यानी मेरी मनोदशा भांपी और फिर जब उसे विश्वास हो गया कि मैं उसकी बातों को समझ सकता हूँ, तब उसने हँसते हुए कहा कि बाबूजी! मैं सच कहता हूँ कि मेरी निगाह में न कोई बड़ा है और न कोई छोटा। मेरे लिए हर व्यक्ति एक जोड़ी जूते के समान है। अर्थात व्यक्ति की, मनुष्य की सामाजिक पहचान वस्तु–जगत के अनुभव के आधार पर ही तय होती है। मोचीराम का सामाजिक अनुभव निश्चयात्मक भाषा में व्यक्त हो रहा है, क्योंकि उसे व्यक्ति मनोभाव व वस्तु जगत का गहरा ज्ञान है। सामान्य भाषा में या लोकव्यवहार में भी कहते हैं कि व्यक्ति की पहचान उसके

जूतों से होती है। मोचीराम सामाजिक मनोभाव से आगे अनुभव सत्य तक अपने वक्तव्य को ले जाता है। इसीलिए तो वह जूतों की मरम्मत को व्यक्ति की मरम्मत से जोड़ देता है। मोचीराम कहता है कि जूते की नाप से बाहर कोई नहीं है। जूते की नाप मोचीराम के अनुभव की नाप से पुष्ट हुए हैं। मोचीराम आदमी की पीड़ा,दर्द, संवेदना भी माप लेता है। यही कारण है कि एक सामान्य आदमी की पीड़ा को वह जूतों की स्थिति से महसूस कर लेता है। मोचीराम और जूतों की मरम्मत के बीच एक मनुष्य की पीड़ा भी चलती रहती है। जूतों पर मोचीराम के हथौड़े की चोट सामने खड़े व्यक्ति के सीने पर पड़ती है, क्योंकि वह आदमी की बिगड़ती स्थिति को महसूस करता है।

मोचीराम कहता है कि मेरे पास तरह–तरह के जूते मरम्मत के लिए आते हैं। ये जूते व्यक्ति की हैसियत बताते हैं। जूता व्यक्तित्व का परिचायक भी होता है। हर जूते की शक्ल अलग–अलग होती है, जैसे कि हम मनुष्य का चरित्र व व्यक्तित्व। जैसे एक जूता मेरे पास आया। उसमें ढेर सारे पैबंद लगे हुए थे। यह पैबंद का जूता जिस मनुष्य का है, उसके चेहरे पर चेचक के दाग हैं। जूते के चकत्ते और चेचक में अंतर नहीं है,क्योंकि दोनों का सौंदर्य नष्ट हो चुका है। यानी व्यक्ति का चेहरा उसकी अवस्था व मनोवृत्ति का ठीक–ठीक परिचय बता रहा है। उस व्यक्ति की फीकी हँसी वैसी ही है, जैसे कि किसी टेलीफोन के खंभे पर कोई पतंग फंस जाती है। मैं उससे कहना चाहता हूँ कि इस फटे जूते पर क्यों अपना पैसा फूंक रहे हो? किन्तु यह कहते हुए मेरी जुबान लड़खड़ा जाती है। उस आदमी की दशा के प्रति मोचीराम के मन में सहानुभूति जगती है क्योंकि वह तो उसी की जाति यानी वर्ग का है। मोचीराम के मन में उसके प्रति सहानुभूति उत्पन्न होती है। ऐसे समय में मोचीराम कहता है कि मैं तब उसके जूते की चकतियों की जगह आंखें टांकता हूँ। मोचीराम को उस व्यक्ति के प्रति गहरी करुणा है, इसीलिए जूते में वह अपनी आंखें या संवेदना टांगता है।

मोचीराम कहता है कि एक जूता और है जो पांव को लांघ गया है। यह दूसरा जूता आर्थिक निश्चिन्तता, मौकापरस्ती व आरामतलबी व दिखावे का सूचक है। वह वर्ग श्रेष्ठता का प्रतीक है। मोचीराम उस व्यक्ति को अक्लमंद नहीं मानता। वह लालची है और बिना श्रम के सुख चाहता है। वह व्यक्ति मोचीराम को ढेर सारे निर्देश देता है, किन्तु उसका उचित पारिश्रमिक नहीं देता। वह चरित्रहीन है। उसकी हरकतों से मोचीराम के मन में पीड़ा उभरती है। मोचीराम की दूसरी पीड़ा यह है कि उसके पेशे और जूते के बीच में एक आम आदमी है। आम आदमी पर टांके तो पड़ते हैं किंतु उसकी चोट हृदय पर दर्ज होती है। ईमानदार श्रम का सम्मान नहीं होगा तो वह चुभेगा ही। मोचीराम ईमानदारी से अपने हिस्से की मेहनत कर रहा है। धर्म व दलाली के नाम पर काम का कोई औचित्य नहीं है। मोचीराम के मन में भी वसंत ऋतु आता है। वह भी चाहता है कि इस काम से कुछ क्षण के लिए मुक्त हो,फिर उसे लगता है कि यदि वह श्रम नहीं करेगा तो पेट कैसे चलेगा? मोचीराम फिर श्रम की ओर लौट आता है। मोचीराम के जीवनबोध को देखकर कुछ लोग कहते हैं कि तुम मोची नहीं शायर हो। मोचीराम अनुभवी व विचारशील प्राणी है। सच को लोग रोमानी बना देना चाहते हैं। किंतु लोग एक गलतफहमी के शिकार हैं। हर व्यक्ति के भीतर सच्चाई है। किंतु कुछ लोगों को सच्चाई समझ में आ चुकी है। किंतु कुछ लोग ऐसे भी हैं कि पेट की आग के कारण अन्याय को चुपचाप सह लेते हैं। किंतु मोचीराम जनता है कि इंकार से भरी हुई चीख और एक समझदार चुप दोनों भविष्य गढ़ने में एक ही तरह का फर्ज अदा करते हैं। कवि के लिए एक ओर प्रतिरोध जरूरी है तो दूसरी ओर संयम भी

आवश्यक है। भविष्य में चुप और चीख दोनों की अपनी अर्थवत्ता है। मोचीराम उस वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है जो वस्तुजगत के यथार्थ को जीवन अनुभव व विवेक से हल करते हैं।

आलोचनात्मक संदर्भ : मोचीराम

मोचीराम कविता धूमिल की लोकधर्मी चेतना की प्रतिनिधि कविता है। मोचीराम श्रमिक वर्ग का प्रतीक है। किंतु मोचीराम बौद्धिक जनचेतना का प्रतीक पात्र है। मोचीराम कविता अपने तेवर के कारण भी चर्चित रही है। यहां कुछ विशेष विशेषताओं की ओर इंगित करना आवश्यक है।

- मोचीराम श्रम से जुड़ा हुआ है। श्रम से जुड़ा व्यक्ति सामाजिक जीवन अनुभूति के सबसे ज़्यादा करीब होता है। मोचीराम के लिए व्यक्ति का दो जोड़ी जूतों में रूपांतरित हो जाने का अर्थ यह है कि व्यक्ति की वर्गीय स्थिति व व्यक्ति की मनोदशा को मापने के लिए श्रम एक आवश्यक मापदंड है।
- श्रम और मोचीराम के बीच समय की अपनी गति भी है। समय परिवर्तनशील है। इस तीव्र बदलाव व जटिल परिस्थितियों के बीच कविता का कार्य भी कठिन है।

11.4.3 मोचीराम : संवेदनागत एवं शिल्पगत वैशिष्ट्य

मोचीराम धूमिल की बहुचर्चित कविता रही है। इस कविता में धूमिल ने मोचीराम के बहाने व्यक्ति, समाज के मनोविज्ञान को बखूबी उद्घाटित किया है। संक्षेप में मोचीराम कविता के संवेदनागत वैशिष्ट्य को निम्न बिंदुओं के माध्यम से समझा जा सकता है:

- मोचीराम एक चरित्र केंद्रित कविता है। किंतु इस कविता में चरित्र के बहाने सामाजिक मनोवृत्ति व यथार्थ का उद्घाटन करना कवि का उद्देश्य रहा है।
- मोचीराम के लिए व्यक्ति के बड़े–छोटे होने से ज़्यादा महत्व इस बात के लिए है कि उसे मरम्मत (सुधार) की कितनी आवश्यकता है। कविता एक साम्य की पड़ताल करती है।
- जूते की नाप और टांके पड़ने के माध्यम से कवि आम आदमी के संघर्ष व उसकी विवशता को बखूबी उद्घाटित कर रहा है।
- कविता, जूते में माध्यम से व्यक्ति के संघर्ष, पीड़ा, विवशता को उद्घाटित करती है।
- मोचीराम एक प्रतीक बन जाता है। मोचीराम सामाजिक व्यवस्था की समझ व उसकी मरम्मत का एक रूपक बन जाता है।
- मोचीराम कविता जिंदा रहने के लिए सही तर्क को हमारे सामने रखती है। इस कविता में धूमिल की कथ्य भंगिमा बहुत संतुलित है। कुछ कविताओं में धूमिल आक्रामक हो उठते हैं, किन्तु मोचीराम कविता में धूमिल का स्वर संयमित है।

- मोचीराम कविता इस मिथ को तोड़ती है कि पेशा एक जाति है। कविता इस तथ्य को हमारे सामने रखती है कि आग और सच्चाई व्यक्ति के मूल में है।
- मोचीराम कविता 'इनकार से भरी हुई एक चीख' और 'एक समझदार चुप' के महत्व को हमारे सामने रखती है।

शिल्पगत वैशिष्ट्य

मोचीराम कविता अपने शिल्पगत वैशिष्ट्य व भंगिमा के कारण महत्वपूर्ण है। संक्षेप में कविता की कतिपय विशेषताएं महत्वपूर्ण है।

- मोचीराम कविता संवादात्मक कविता है। कवि और मोचीराम के मध्य संवाद के माध्यम से कविता सार्थक संवाद रचती–बुनती है।
- कविता वर्णात्मक व चित्रात्मक दोनों शैलियों को लेकर चलती है।
- कविता में बोलचाल के शब्दों के प्रयोग से प्रामाणिकता प्रदान की गई है।
- मोचीराम शिल्प की दृष्टि से अनेक चित्र हमें पकड़ाती है।
- मोचीराम कविता में बिम्ब व प्रतीक का सार्थक प्रयोग हुआ है।

11.5 नक्सलबाड़ी कविता

'सहमति...
नहीं, यह समकालीन शब्द नहीं है
इसे बालिगों के बीच चालू मत करो'
–जंगल से जिरह करने के बाद

उसके साथियों ने उसे समझाया कि भूख

का इलाज नींद के पास है !

मगर इस बात से वह सहमत नहीं था

विरोध के लिए सही शब्द टटोलते हुए

उसने पाया कि वह अपनी जुबान

सहुआइन की जांघ पर भूल आया है।

फिर भी हकलाते हुए उसने कहा...

'मुझे अपनी कविताओं के लिए
दूसरे प्रजातंत्र की तलाश है',
सहसा तुम कहोगे और फिर एक दिन...
पेट के इशारे पर
प्रजातंत्र से बाहर आकर
वाजिब गुस्से के साथ अपने चेहरे से
कूदोगे
और अपने ही घूँसे पर
गिर पड़ोगे।
क्या मैंने गलत कहा? आखिरकार
इस खाली पेट के सिवा
तुम्हारे पास वह कौन–सी सुरक्षित
जगह है, जहाँ खड़े होकर
तुम अपने दाहिने हाथ की
साजिश के खिलाफ लड़ोगे?
यह एक खुला हुआ सच है कि आदमी...
दाएँ हाथ की नैतिकता से
इस कदर मजबूर होता है
कि तमाम उम्र गुजर जाती है मगर गाँड
सिर्फ बायाँ हाथ धोता है।
और अब तो हवा भी बुझ चुकी है
और सारे इश्तिहार उतार लिए गए हैं

जिनमें कल आदमी...

अकाल था। वक्त के

फालतू हिस्से में

छोड़ी गई फालतू कहानियाँ

देश–प्रेम के हिज्जे भूल चुकी हैं,

और वह सड़क...

समझौता बन गई है

जिस पर खड़े होकर

कल तुम ने संसद को

बाहर आने के लिए आवाज दी थी

नहीं, अब वहाँ कोई नहीं है

मतलब की इबारत से होकर

सब के सब व्यवस्था के पक्ष में

चले गए हैं। लेखपाल की

भाषा के लम्बे सुनसान में

जहाँ पालो और बंजर का फर्क

मिट चुका है चन्द खेत

हथकड़ी पहने खड़े हैं।

और विपक्ष में...

सिर्फ कविता है।

सिर्फ हज्जाम की खुली हुई 'किस्मत' में एक उस्तुरा...

चमक रहा है।

सिर्फ भंगी का एक झाड़ू हिल रहा है
नागरिकता का हक हलाल करती हुई
गंदगी के खिलाफ
और तुम हो विपक्ष में
बेकारी और नींद से परेशान।
और एक जंगल है–
मतदान के बाद खून में अँधेरा
पछींटता हुआ।
(जंगल मुखबिर है)
उसकी आँखों में
चमकता हुआ भाईचारा
किसी भी रोज तुम्हारे चेहरे की हरियाली को
बेमुरव्वत चाट सकता है।
खबरदार!
उसने तुम्हारे परिवार को
नफरत के उस मुकाम पर ला खड़ा किया है
कि कल तुम्हारा सबसे छोटा लड़का भी
तुम्हारे पड़ोसी का गला
अचानक,
अपनी स्लेट से काट सकता है।
क्या मैंने गलत कहा?
आखिरकार... आखिरकार...

11.5.1 नक्सलबाड़ी कविता की व्याख्या

नक्सलबाड़ी धूमिल की चर्चित कविता है। नक्सलबाड़ी आंदोलन ने बड़े स्तर पर बुद्धिजीवियों को प्रभावित किया था। धूमिल के ऊपर भी इस आंदोलन का प्रभाव पड़ा था। यह कविता संसद से सड़क तक में संग्रहित है।

सन 1967 में पश्चिम बंगाल के नक्सलबाड़ी नामक स्थान पर सरकार के भूमि अधिग्रहण कानून के खिलाफ मजदूरों ने एक आंदोलन किया था। यह कविता उसी आंदोलन से प्रभावित है।

नक्सलबाड़ी कविता में कवि कहता है कि–सहमति को समकालीन समस्याओं के साथ जोड़कर नहीं देखा जा सकता। अर्थात तत्कालीन भूमि अधिग्रहण से हमारी सहमति नहीं है। इस सहमति को युवाओं का समर्थन नहीं दिया जा सकता। जंगल यानी व्यवस्था से संघर्ष करने के बाद व उनकी बातों को स्वीकार करने के पश्चात व्यवस्था के समर्थक लोगों ने उसको समझाया कि भूख से बचने का उपाय सोना है अर्थात उसका अतिक्रमण करना। मगर वह व्यक्ति उन लोगों की बातों से सहमत न थे और वे उसकी बातों में नहीं आये। लेकिन उनके पास शब्द नहीं हैं, क्योंकि वे चरित्रहीन पथभ्रष्ट होकर अपने शब्द भूल गए हैं। फिर भी हकलाते हुए उसने कहा–मुझे अपनी कविताओं के लिए दूसरे प्रजातंत्र की तलाश है। क्योंकि इस प्रजातंत्र से वह सहमत नहीं है। क्योंकि इस प्रजातंत्र में मजदूरों के लिए स्पेस नहीं है। इस प्रजातंत्र में हम अपने ही हालात के हाथ गिर पड़ेंगे। समस्या यह भी है कि इस भूख के सिवा तुम्हारे पास सुरक्षित जगह और है भी क्या? जहां खड़े होकर तुम छद्म नैतिकता से लड़ोगे। पूरी उम्र तो तुम दूसरों की दलाली करते रहे हो, फिर वही करते रहोगे। तुम्हारी नैतिकता जब उनके पक्ष में खड़ी हो जाएगी तो तुम कैसे लड़ोगे?

यह भयावह समय है। अब तो संभावना भी समाप्त हो चुकी है। पुराने लुभावने नारे विज्ञापन चुनाव के बाद बदल गए हैं। पुराने देश प्रेम की कहानियां हृदय से मिट चुकी हैं। सड़क और संसद दोनों स्वार्थ की बलि चढ़ चुके हैं। इस व्यवस्था में कोई सुनने वाला नहीं। सब–के–सब व्यवस्था के पक्ष में चले गए हैं। इस समय विपक्ष में केवल कविता खड़ी है।

11.5.2 नक्सलबाड़ी : आलोचनात्मक संदर्भ

नक्सलबाड़ी धूमिल की कविताओं का प्रस्थान बिंदु रहा है। धूमिल की वैचारिक यात्रा के निर्माण में नक्सलबाड़ी आंदोलन की बड़ी भूमिका रही है। धूमिल की यह कविता उस वैचारिक स्मृति को प्रगाढ़ करने के निमित्त रची गयी है। नक्सलबाड़ी कविता की अंतर्निहित विशेषताओं के कारण कुछ बिंदुओं को देखना उचित होगा।

- सहमति समकालीन मुहावरा नहीं है, क्योंकि समकालीन चिंतन प्रश्न–प्रतिप्रश्न पर टिका हुआ है।
- कवि ने कहा है कि उसे अपनी कविताओं के लिए दूसरे प्रजातंत्र की तलाश है। कवि के अनुसार वर्तमान प्रजातंत्र अश्लीलता व शोषण पर टिका हुआ है। इस प्रजातंत्र में सत्य को धारण करने की क्षमता नहीं रह गयी है। इसलिए कवि को अपनी कविताओं के लिए दूसरे प्रजातंत्र की तलाश है।

- धूमिल कहते हैं कि व्यक्ति का सबसे बड़ा सच खाली पेट यानी भूख होती है। एक भूखे व्यक्ति की सबसे बड़ी नैतिकता रोटी है। इस नैतिकता और मजबूरी के बीच मनुष्य का जीवन चलता रहता है।
- इश्तहार व लुभावने विज्ञापन तभी तक उपयोगी रहते हैं, जब तक कि शोषण की प्रक्रिया चलती रहती है। देश–प्रेम के शब्द व कहानियां पुरानी पड़ चुकी हैं।
- इस कठिन समय में विपक्ष या विरोध को केवल कविता ही जीवित किये हुए है।

11.5.3 नक्सलबाड़ी : संवेदनागत एवं शिल्पगत वैशिष्ट्य

नक्सलबाड़ी धूमिल की वैचारिक कविता है। इस कविता में धूमिल की वैचारिकी अपने उन्नत रूप में अभिव्यक्त हुई है। संक्षेप में नक्सलबाड़ी कविता की कतिपय विशेषताएं हैं–

- सार्थक वक्तव्य ही धूमिल की कविताओं की विशेषता है। नक्सलबाड़ी कविता में सार्थक वक्तव्यों की खोज की गई है।
- कविता के लिए दूसरे प्रजातंत्र की खोज का अर्थ यह है कि वर्तमान सामाजिक व्यवस्था असंगतिपूर्ण है।
- नक्सलबाड़ी कविता विपक्ष एवं आंदोलन की कविता है। यही इसकी संवेदनागत विशेषता है।
- नक्सलबाड़ी कविता में भूख और आंदोलन के परस्पर अंतरसंबंध को उद्घाटित करती है।
- भूख से तनी मुठी का नाम नक्सलबाड़ी है। यह कथ्य अव्याप्त है। नक्सलबाड़ी कविता में विरोध का स्वर मुखर है।
- विपक्ष में सिर्फ कविता का होना एक सार्थक संकेत है।

शिल्पगत वैशिष्ट्य

- शाब्दिक व्यंजना से कविता की शुरुआत होती है। सहमति व असहमति के द्वंद्व से कविता की शुरुआत होती है।
- नक्सलबाड़ी कथ्य की दृष्टि से अधूरी कविता है। इसलिए शिल्प की दृष्टि से भी यह तथ्य ओझल न हो सका है।
- खाली पेट व भूख ही विरोध के प्रतीक बन गए हैं।

11.6 सारांश

प्रिय छात्रों, इस आलेख संख्या का आपने अध्ययन किया। इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात आपने जाना कि धूमिल की कविताएं स्वतंत्रता पश्चात के मोहभंग की कविताएं हैं। धूमिल की कविताएं नए प्रजातंत्र की तलाश की

परिकल्पना पर आधारित हैं। मुझे अपनी कविताओं के लिए नए प्रजातंत्र की तलाश है, यह धूमिल का प्रसिद्ध वाक्य है। मुनासिब कारवाई कविता भाषा में आदमी होने की तमीज पर आधारित है।

मोचीराम कविता में मोचीराम एक अनुभवी वर्ग चेतना का प्रतीक है। इस कविता के माध्यम से हमने जाना कि हर व्यक्ति अपनी वर्गीय सीमाओं से बधा हुआ है। मोचीराम के लिए हर व्यक्ति एक जोड़ी जूता है। इसका तात्पर्य यह है कि हर व्यक्ति की मनोदशा व मनोवृत्ति उसकी वर्गीय स्थिति से जुड़ी हुई है।

नक्सलबाड़ी कविता भूमि अधिग्रहण के विरोध में हुए मजदूरों के आंदोलन पर आधारित है। भूमि अधिग्रहण के खिलाफ आम आदमी का संघर्ष एक होकर ही लड़ा जा सकता है। यह कविता आम आदमी की एकता को दर्शित करती है।

11.7 कठिन शब्दों के अर्थ

कटघरा– एक बंद घेरा

शिनाख्त–पहचान करना

बाट– सामान तौलने में प्रयुक्त

आढ़तिया– अनाज का व्यापार व खरीद करने वाला

चुंगी– अनाज की खरीद–बिक्री का स्थान

बसूले– बढ़ई का औजार

गल्ले– अनाज

हलफनामा– शपथपत्र

तमीज– संस्कार

अघाया–तृप्त

ठीहे–स्थान

प्रजातंत्र–लोकतंत्र, जनता का शासन

हिज्जे– अक्षर

हज्जाम–नाई

बेमुरव्वत–बिना दया के

पतियाए–स्वीकार किया हुआ

पेशेवर–काम को लेकर व्यावसायिक दृष्टि वाला

नवैयत–पूंजी, धन की स्थिति

चिहुँकर– घबरा कर

तांत– एक प्रकार का कपड़ा

11.8 संभावित प्रश्न

प्र. 1 'मुनासिब कारवाई' कविता की मूल संवेदना पर प्रकाश डालिए।

_____

_____

_____

प्र. 2 धूमिल की कविता 'मुनासिब कारवाई' के शिल्प पर विचार कीजिए।

_____

_____

_____

प्र. 3 धूमिल की कविता 'मोचीराम' की संवेदनागत समीक्षा करें।

_____

_____

_____

प्र. 4 'मोचीराम' कविता के शिल्प पर चर्चा करें।

_____

_____

_____

प्र. 5 'नक्सलबाड़ी' कविता की मूल संवेदना पर प्रकाश डालें।

_____

_____

_____

प्र. 6 'नक्सलबाड़ी' कविता के शिल्प पर प्रकाश डालिए।

_____

_____

_____

11.9 संदर्भ पुस्तकें

1. हिंदी साहित्य का आधुनिक इतिहास–बच्चन सिंह
2. संसद से सड़क तक–धूमिल
3. जनवादी समझ और साहित्य–रामनारायण शुक्ल

केदारनाथ सिंह की काव्यगत विशेषताएँ

12.0 रूपरेखा

12.1 उद्देश्य

12.2 प्रस्तावना

12.3 केदानाथ सिंह की काव्यगत विशेषताएँ

12.4 सारांश

12.5 कठिन शब्द

12.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

12.7 संदर्भ ग्रन्थ

12.1 उद्देश्य

केदारनाथ सिंह समकालीन हिन्दी कविता के महत्वपूर्ण रचनाकार हैं। यह मुख्य रूप से मानवीय संवेदना के कवि हैं। इनकी संवेदना मानव जीवन तक सीमित न रहकर मानवेत्तर प्राणियों के प्रति भी देखी जा सकती है। इस अध्याय के अध्ययनोपरान्त आप केदारनाथ सिंह के काव्य में चित्रित गाँव, नगर, महानगरीय जीवन शैली, किसान जीवन, विस्थापन की पीड़ा और भाषा शैली से अवगत हो सकंगे।

12.2 प्रस्तावना :

आधुनिक काल के प्रमुख कवियों में से एक केदारनाथ सिंह ने लगभग 1950 ई० में हिंदी काव्य जगत में प्रवेश किया। वह युग प्रयोगवाद और नयी कविता के संधिकाल का था। प्रयोगवाद में प्रगतिशील रचनाधर्मिता से जुड़े कई रचनाकार शामिल हुए थे। उनमें प्रगतिवादी कविता की कई विशेषताएँ तो थी ही, साथ ही उनकी सीमाएं भी थीं। केदारनाथ सिंह की रचनाओं पर प्रगतिवादी तत्त्वों का प्रभाव तो पड़ा ही लेकिन 'नयी कविता' के कवियों में निश्चितरूप से वे सबसे महत्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं।

साठोतरी कविता से लेकर जनवादी कविता आंदोलनों तक का प्रभाव भी उनकी कविताओं में परिलक्षित है। केदारनाथ सिंह की कविताएँ सोद्देश्य मालूम पड़ती हैं।

उन्होंने किसी ऐसे जगत की कविताओं का सृजन नहीं किया जो अबूझ और अजानी हो। उनका समस्त रचना संसार अपने आस–पास के परिवेश की रचनात्मक प्रतिक्रियाएं हैं। वे अपनी पीढ़ी के अन्य कवियों की तरह स्वयं को लेकर ही कविता नहीं लिखते रहे। उनका 'स्व' इतना व्यापक है कि उसकी परिधि में गांव–जवार, कस्बे, महानगर, छोटे–बड़े लोग, पारम्परिक व युगीन आदर्श, पशु–पक्षी, प्रकृतिक आनंद व विपदाएँ, भूखण्ड, कोई टीला, कोई पुल, कोई अधबनी इमारत, सब कुछ आ जाता है और वह उनका निजी संदर्भ बन जाता है। केदार जी की निजता का अनंत फैलाव ही इनकी कविता का फैलाव है। अपनी तमाम विशेषताओं के कारण वे एक सच्चे, आत्मीय, भरोसेमंद और विस्तृत अर्थों में भारतीय कवि के रूप में हमारे सामने उपस्थित होते हैं। हालांकि परमानन्द श्रीवास्तव उनके नास्टेल्जिया को यूटोपिया कहना पसंद करते हैं। उन्होंने इसके तर्क भी दिये हैं। वे कहते हैं– ''हिन्दी के समकालीन काव्य परिदृश्य में केदारनाथ सिंह जैसे कवि जो बार–बार गांव की ओर जाकर कविता का नया मुहावरा, कविता के लिए नयी ऊर्जा प्राप्त करना चाहते हैं, वह संहार और विनाश की ताकतों के विरुद्ध एक स्पष्ट साहसिक काव्यात्मक निर्णय है। यह रोमान या नास्टेल्जिया नहीं है अपितु यह सकारात्मक यूटोपिया है जिसे प्रतिरोध चेतना का समशील कहा जा सकता है।''

12.3 केदारनाथ सिंह की काव्यगत विशेषताएँ

भावगत वैशिष्ट्य

प्रकृति चित्रण :– केदारनाथ सिंह चूंकि लोक–जीवन की संवेदना को समझने में निष्णात रहे हैं साथ ही उसके स्वभाव को खूब पहचाने हैं। इसीलिए इनकी रचनाओं में केवल लोग–बाग ही नहीं हैं बल्कि प्रकृति भी है। और प्रकृति उनके यहां लोगों से कम महत्त्वपूर्ण हो ऐसा भी नहीं है। केदार जी ने कभी भी केवल मनुष्य केन्द्रित कविता पर जोर नहीं दिया। वे मानवेतर की भी मनुष्य समाज से साझीदारी के हिमायती रहे हैं और उनकी रचनाओं में प्रकृति का मनोरम रूप सदैव विद्यमान रहा है। प्रकृति की छोटी–मोटी हलचलें भी पूरी गरिमा के साथ उनकी रचनाओं में उपस्थित हैं। प्रकृति के अतिसूक्ष्म क्रियाकलाप भी कवि के लिए न सिर्फ कौतूहल पूर्ण रहे हैं बल्कि उसे वे एक बालसुलभ विस्मय के साथ कविता मैं उपस्थित करते रहे हैं। उनकी यह शैली कविता को और अर्थपूर्ण और संवेदनशील बनाती है। उनके यहाँ जड़ और चेतन का कोई फर्क नहीं मिलता इसलिए प्रकृति न सिर्फ मनुष्य बल्कि जड़ वस्तुओं से भी अपना गहरा हेलमेल रखे हुए है। पृथ्वी, पहाड़, नदियां, चट्टानें, नीम, तारे, जलकुम्भी, कौआ, सारस, चील, मेमने, भेड़, बैल, घोड़ा, सियार, गाय, दीमक बिच्छू, कठफोड़वा, टमाटर, धान की मंजरियां, बबूल, बरगद, बारिश, हवा, मौलसिरी का पेड़, आलू, चिटियां, गेहूं के पौधे, घड़ियाल, सूअर, गरिया, घाँसला, प्याज, ठीकरा कुदाल, नमक, कुएं, मधुमक्खियां, झरबेरी, बाघ, संतरा और शिरीष के फूल की व्यापक दुनिया है। यह प्रकृति की विशाल दुनिया मनुष्य के इर्द–गिर्द ही है, उसी से कोई न कोई रिश्ता बनाये निर्जन प्रकृति यहां नहीं है। गंगा में स्नान करने का वर्णन कवि इन शब्दों में करते हैं–

''बरसों बाद
आज गंगा में नहाया
देर तक
खूब डूबा–उतराया
एक पक्षी की तरह
घूंट–घट जल पिया
आत्मा ने देर तक
गहरे अथाह जल से बातें की
जल से निकलकर
बैठा रहा रेती पर
गीली देह को
बालू के गरम–गरम गमछे से पौछा
अच्छा लगा बालू
बालू का स्पर्श।''

बालू जैसी चीज को केदारजी जिस ढंग से अपनी कविताओं में स्थान देते हैं यही उनकी संवेदनशीलता का परिचायक है।

महानगरीय जीवन की त्रासदी :– उनकी कविताओं में एक ओर जहाँ छोटे शहरों, कस्बों यथा बनारस, पडरौना आदि की प्रकृति, जीवन और समस्याएँ हैं तो दूसरी ओर दिल्ली जैसे महानगरों की चुनौतियाँ भी हैं। महानगर के एकाकी जीवन से न केवल केदारनाथ सिंह पीड़ित थे बल्कि यह सत्य है कि हर वह व्यक्ति जो छोटे गाँवों–कस्बों से बड़े शहरों में जाता है उन सब के सामने यह एक बड़ी चुनौती होती है कि 'अपने' लोगों के बिना आगे का जीवन कैसे गुजारा जाए। शहर की परिचयहीनता को स्पष्ट करते हुए वे 'एक और अकाल' कविता में कहते हैं

'मैंने खुद को समझाया यार, दुःखी क्यों होते हो
इतने कट गये
बाकी कट ही जायेंगे दिन
क्योंकि शहर में लोग तो हैं
फिर एक दिन
जब किसी तरह नहीं कटा दिन
तो मैं निकल पड़ा
लोगों की तलाश में
मैं एक–एक से मिला

मैंने एक–एक से बात की
मुझे आश्चर्य हुआ लोगों को तो लोग
जानते तक नहीं थे।''

महानगरों में 'पहचान का संकट' सबसे बड़ी त्रासदी के रूप में उभरा है। वे आजीवन अपनी रचनाओं में इस प्रश्न को उठाते रहे।

यथार्थ और रोमानियत का संगम :– केदारनाथ सिंह की कविताओं को रोमानियत की भीनी और मीठी खुशबू मोहक बनाती है। यह वही तत्व है जो उन्हें हिन्दी कविता में चिर युवा बनाये हुए है। उनकी परवर्ती पीढ़ियां सबसे पहले किसी से आकृष्ट होती हैं तो वे केदार जी ही हैं। उनका यह काव्य स्वभाव ठोस लगती वस्तुओं को भी अमूर्त बना देता है और अमूर्त वस्तुएं स्वतः ठोस बन जाती हैं। ढेर सारी सब्जी काटने के बाद पड़ा चाकू उन्हें चिड़िया के पर की तरह कोमल लगने लगता है और पैंसठ की उम्र में घास में गाड़ा गया टूटा दांत उगने की संभावना से लैस जान पड़ता है। केदारनाथ सिंह अपने दौर में अकेले रुमानी कवि नहीं रहे हैं श्रीकांत वर्मा और सर्वेश्वर दयाल सक्सेना में भी वह प्रवृत्ति दिखाई देती है। आदर्शों से लैस युवकों का कविता से ऐसा रिश्ता प्रायः रहा है। केदार जी की आरम्भिक कविताओं में रुमानियत का प्रभाव अधिक रहा, जिसने लोगों का ध्यान बरबस अपनी ओर आकृष्ट किया। बाद में वह शब्दों के कोमल बर्ताव की ओट में छिप गया है। वह चित्रों से निकलकर ध्वनियों और आकांक्षाओं में प्रवेश कर गया है। उनके अग्रज कवि शमशेर बहादुर सिंह भी उनकी कविता में रुमानियत देखते हैं। बाद में केदारनाथ सिंह ने गीतों का रास्ता छोड़ दिया इसके बावजूद सपना, उच्छ्वास और एक युवक के आदर्शों की पवित्र रंगीनी उनके यहां खास तौर पर दिखाई पड़ती है। रवीन्द्रनाथ और येट्स के स्वर, कुछ आधुनिक स्वर में रूपायित हो नये केदार के सांचे में ढले हुए मिलेंगे। युवकों के वे प्रिय कवि हैं। एक टटकापन उनके प्रकृति के रोमानी चित्र में मिलेगा। शब्दों की मधुरता पर वे खास ध्यान देते हैं। केदार जी की रुमानियत ने उन्हें यथार्थ से पलायन नहीं सिखाया है बल्कि वे उसके बल पर नये यथार्थ की रचना करने में सफल रहे हैं। जो वस्तु, विचार और संवेदना को जड़ होने से रोकती है। केदारजी वस्तुओं को ऐसे कोण पर रखते हैं जहां से वे अनेकार्थता को प्राप्त करती हैं और हर अर्थ अपने आप में पूर्ण होता है। 'बाघ' बीसवीं सदी की एक महत्त्वपूर्ण कृति बन सकी तो उसमें रुमान का भी योगदान है। केदार जी ने रुमानियत को वस्तुस्थिति से पलायन नहीं बल्कि कविता की एक बड़ी शक्ति के रूप में स्थापित किया है। केदारनाथ सिंह की कुछ कविताओं में एक प्रकार के रोमांटिक फैसिनेशन का आभास मिलता है। ऐसी कविताओं में सर्वाधिक चर्चित और उल्लेखनीय रचना है 'अनागत', जो अनेक अर्थों की संभावना से युक्त है। कवि की इस तरह की रुमानी रहस्यमयी भावुकता ने निश्चित ही बहुत सारे परवर्ती और कुछ पूर्ववर्ती कवियों को भी प्रभावित किया।

एकलाप और जनसंवाद :– केदारनाथ सिंह की कविताओं की एक बड़ी विशेषता संवादधर्मिता है। संवाद को नाटकों की बड़ी विशेषता के रूप में रेखांकित किया जाता है, परन्तु वह हमारे दैनिक जीवन की विशेषता है। भाषा मूलतः संवाद करने का काम करती है, यह संवाद व्यक्तियों, समाज से या खुद से भी हो सकता है। केदारनाथ अपनी बहुतेरी कविताओं में आत्मलाप करते नज़र आते हैं, परन्तु उसी बहाने वे समाज के बड़े सवालों से जूझ रहे होते हैं–

''तुम्हें नूर मियाँ की याद है केदारनाथ सिंह
कैसे हो मेरे भाई जगननाथ''

इस तरह की अनेक कविताएँ हैं जिनमें कवि ने पात्र विशेष से या त्रिलोचन जैसे सहयोगी कवियों से संवाद स्थापित किया है और साधारण सी बात में से नई और बड़ी बात पैदा की है।

वैश्विक दृष्टि :– किसी कवि की रचना तभी चिरकाल तक जीवित रह सकती है जब उसमें लोक–कल्याण की भावना निहित होगी। उसी प्रकार किसी कविता के महत्व का एक पैमाना यह भी होता है कि उसका दायरा कितना विस्तृत है। स्थानीयता और समकालीनता से जुड़ते हुए भी वह दिक्काल का कितना अतिक्रमण करता है। इस दृष्टि से केदारनाथ जी की कविता के पात्र विश्व नागरिक हैं। यह अनायास नहीं है कि उनकी कविताओं में बुद्ध बार–बार आते हैं, इस समय दुनिया को बुद्ध की करूणा से ज्यादा भला और किस चीज़ की जरूरत होती। सत्ता से लगातार हारते और हिम्मत हारते साहित्य को बुद्ध से ज्यादा ऊर्जा कौन देगा। कई बार ऐसा लगता है कि केदारनाथ सिंह के स्थानीयता और वैश्विकता में गहरा अन्तर सम्बंध है, दोनों एक–दूसरे को देखने की दृष्टि देते हैं। निश्चित रूप से इसमें कवि ने तमाम देशों के यात्री होने और बहुपठित होने की भी भूमिका वर्णित की है, परन्तु उसके मूल में वह सौन्दर्य बोध है, जो पूरी दुनिया को एक सूत्र में बाँधता है–

''कि उंगलिमाल छुटा घूम रहा है शहर में
और सुजाता अपने शहर के
किसी छतुहा अस्पताल में भर्ती है''

प्रस्तुत पंक्तियों द्वारा कवि ने आज के किसी डकैत, आतंकी, अपराधी का नाम न लेकर ऐतिहासिक डाकू अंगुलिमाल को प्रतीक के रूप में इस्तेमाल किया है। आज जबकि उस युग की अपेक्षा अपराध में कई गुणा ज्यादा वृद्धि हुई है तब कवि का यह कहना कि अंगुलिमाल जैसे कई डकैत छुट्टा घूम रहे हैं शहर में यथार्थ स्थिति का परिचायक है। हत्या, अपहरण, बलात्कार जैसे दुष्कर्म बुद्ध के इस देश में खुल रूप में हो रहे हैं लेकिन बुद्ध इसकी ही सुध ले रहे हैं, विडम्बना यह है कि 'सुजाता' जो ज्ञान का प्रतीक है। जिसकी खीर खाने के बाद ही स्वयं बुद्ध को ज्ञान की प्राप्ति हुई वैसा ज्ञान आज पुतहा अस्पतालों में भर्ती हैं।

जीवन सौन्दर्य एवं प्रेम का चित्रण :– केदारनाथ सिंह की कविता जीवन–सौन्दर्य और प्रेम के केन्द्र में बँधती हुई मानवता की परिधि का निर्माण करती है क्योंकि उनकी कविता में भविष्य के सुखद विस्तार की झलक दिखाई देती है। केदारनाथ सिंह एक ऐसी दुनिया का सपना देखते हैं जिसमें सभी प्राणियों को एक समान दृष्टि से देखा जाता है।

''उसका हाथ
अपने हाथ में लेते हुए मैंने सोचा
दुनिया को
हाथ की तरह गर्म होना चाहिए।''

विस्थापन का दंश :– केदारनाथ सिंह की कविताओं में विस्थापन का दंश भी प्रमुखता से उभरा है। उन्हें दिल्ली में यह महसूस होता था जैसे वे अपनी जड़ों से कट चुके हैं। वस्तुतः विस्थापन का बोध दिल्ली की उपज है। यह बोध बाद में स्थाई बनता चला गया और गहराता गया। जब उन्हें यह महसूस हुआ कि वे सिर्फ दिल्ली में ही विस्थापित नहीं हैं बल्कि वे अपने मूल स्थान से भी विस्थापित हो चले हैं। गाँव में भी वे परदेसी हैं, बाहरी व्यक्ति हैं, वे मेहमान हैं, जिन्हें दिल्ली लौट जाना है। विस्थापन का दोहरा दंश उन्हें टीसता और आहत करता है। 'गाँव आने पर' कविता में उसकी अभिव्यक्ति यूं हुई है–

''क्या करूँ मैं?
क्या करूँ, क्या करूं कि लगे
कि मैं इन्हीं में से हूँ
इन्हीं का हूँ
कि यही हैं मेरे लोग
जिनका में दम भरता हूँ कविता में
और यही यही जो मुझे कभी नहीं पढ़ेंगे।''

केदार जी विस्थापन की मनोस्थिति पर स्वयं ही कहते हैं– ''विस्थापन की पीड़ा को मैं बहुत लम्बे अरसे से अनुभव करता हूँ। जो गांव से आये हैं, वे गांव के रहे नहीं, महानगर के हो नहीं सके तो न यहाँ के रहे, न वहाँ के रहे। यह अजब विस्थापन की स्थिति है, जिसे झेलना हमारी नियति है। अभी गांव पिछले दिनों गया था, तो वहां अपना इरिलिवेन्स महसूस हुआ। मैं क्यों आया यहां? मैं क्यों हूँ यहाँ?'' विस्थापन इक्कीसवीं सदी का एक कट सत्य है। जिसे केदारजी भलीभाँति समझते हैं। उनकी बाद कि रचनाएँ विस्थापन के मनोविज्ञान से स्पष्ट रूप से प्रभावित दिखाई पड़ती हैं।

किसान जीवन का यथार्थ :– कई वर्षों से महानगर में रहने के उपरान्त भी केदारनाथ सिंह का हृदय गांव की संस्कृति में रचा बसा है। केदारनाथ सिंह की कविता का विषय क्षेत्र अत्यन्त सहज एवं विस्तृत है। इन्होंने गाँव की साधारण से साधारण वस्तुओं को कविता का विषय बनाया क्योंकि उनका अनुभव संसार व्यापक एंव गहरा है, 'आखिन देखी' है। वे यथार्थ की मिठास एवं कड़वाहट में जीते हैं और उनकी कविता यथार्थ की अनुभूति और मुक्ति की कामना तथा आस्था और विश्वास के सहारे जीती है। केदारनाथ सिंह जब भारतीय कृषक जीवन की पीड़ा का यथार्थ वर्णन करते हैं तो प्रेमचन्द याद आते हैं। प्रेमचंदीय संवेदना का विस्तार केदार की कविताओं में दिखाई देता है। किसान के आर्थिक दोहन को 'दाने' शीर्षक कविता में अत्यन्त प्रभावित ढंग से प्रस्तुत किया है।

''नहीं
हम मंडी नहीं जाएँगे
खलिहान से उठते हुए
कहते हैं दाने

जाएँगे तो फिर लौटकर नहीं आएँगे
जाते जाते
कहते आते हैं दाने।''

भाषागत वैशिष्ट्य :– केदारनाथ सिंह भाषा के प्रति अधिक सचेत हैं। कवि की भाषा परम्परागत लोक काव्यधारा से प्रभावित है। केदार ने भाषा की सांगीतिक प्रस्तुति की है। गीत के माध्यम से कविता में प्रवेश करने वाले केदारनाथ सिंह का ग्राम्यांचल से अत्यन्त अपनत्व भाव है। इसलिए इनकी कविता में देशज शब्दों का प्रयोग हुआ है। केदारनाथ जहाँ गीत की लयात्मकता एवं ग्राम्यांचल से अपने शब्दों को हृदयगम करते हैं, वहीं वर्तमान जीवन की विसंगतियों से चाहे वह शहरी हो या गाँव की, उसकी भी मार्मिक, सहज एवं उत्तेजक प्रस्तुति करते हैं। केदारनाथ सिंह की काव्य–भाषा की विशेषता रही है कि जीवन की विसंगतियों की प्रस्तुति में खुरदुरे ही नहीं, अपितु कोमत्र, सरल शब्दों के प्रयोग किये हैं। यही कारण है कि उनकी कविता में भाषा की लयात्मकता बनी रहती है उनकी भाषा, कहानी एवं नाटक तत्वों से भी प्रभावित है केदार की भाषा यथार्थ की आँच से पकी है। काव्य–भाषा की दृष्टि से नयी कविता के कवियों में केदारनाथ सिंह महत्त्वपूर्ण कवि हैं। केदारनाथ सिंह की काव्य–भाषा में लोक–जीवन की भीनी गंध है। इस गंध में लोक–जीवन का संघर्ष नहीं है, उसका कोमल पक्ष है। लय के साथ उन्होंने तरह–तरह के प्रयोग किये हैं।

बिम्ब योजना :– काव्य–शिल्प में बिम्ब की आवश्यकता अनिवार्य मानने वाले कवि केदारनाथ सिंह की कविताओं में बिम्ब की सहज प्रभावोत्पादक प्रस्तुति हुई है कहना अत्युक्ति न होगा कि इनकी कविताओं में बिम्ब नहीं, बल्कि बिम्बों में कविता जीवित है। इनकी कविता पूर्णरूप से बिम्ब फलक पर ही रची–बसी है। इनकी कविताओं में बिम्ब निर्मित समीचीन भावों एवं परिवेशों के अनुरूप बन पड़े हैं। इनकी कविताओं में बिम्ब–निर्माण की दृष्टि से काफी उतार–चढ़ाव है। इनकी प्रारम्भिक कविताओं में सहदय की रागात्मक वृत्तियों का परिचय मिलता है, जबकि परवर्ती कविताओं में रागात्मक वृत्ति की जगह विचारात्मक वृत्ति विद्यमान है। इसीलिए आधुनिक जीवन की विसंगतियों को मूर्त रूप देने के लिए इन्होंने बिम्ब ही नहीं, अपितु बिम्बों की शृंखला ही प्रस्तुत की है। इनकी कविताओं में बिम्ब–चयन विशेषकर प्राकृतिक लोक जीवन दैनिन्द्रिय जीवन से किये गये हैं। जीवन की असमानताओं व पीड़ाओं को प्रस्तुत करने में इनके बिम्ब अद्वितीय हैं। इस प्रकार कह सकते हैं कि इनकी बिम्ब–रचना सहज एवं संवेग है। केदारनाथ सिंह ने निम्न पंक्तियों में 'अक्टूबर माह' के माध्यम से पूरे घर के वातावरण को चित्रित किया है–

''घर सुन्दर था
जैसे की आम तौर पर होता है
अक्टूबर के शुरू में''

अक्टूबर सम्पूर्ण बिम्ब खड़ा करने में सक्षम है। अक्टूबर वह महीना है, जिसमें न ज्यादा गर्मी होती है, न ही ज्यादा सर्दी। शरद ऋतु हर ओर सुंदरता बिखेरती है। ऐसे खूबसूरत महीने से घर की सुन्दरता की तुलना करना यह बताता है कि उनकी दृष्टि प्रकृति के हर पक्ष पर थी यही कारण है कि उनके बिंबो में जीवंतता है।

प्रतीक योजना :– केदारनाथ सिंह की कविताओं में प्रतीकों का प्रयोग भी प्रमुखता से हुआ है। इनकी कविताओं में प्रतीकों के नए अर्थ खुलते हैं। केदारनाथ सिंह की कविता में शब्द, वाक्य तथा शीर्षक तक में प्रतीक की सुन्दर योजना दृष्टिगोचर होती है। केदारनाथ सिंह ने प्रतीकों के स्रोतों तथा प्रतीकों की महत्ता के सम्बन्ध में दृढ़ विश्वास के साथ 'तीसरा सप्तक' में कहा है– ''मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि आधुनिक जीवन की जटिलताओं और अन्तर्विरोधों को व्यक्त करने के लिए लोक–साहित्य, लोक–धर्म पुराण तथा इतिहास के खण्डहरों में बहुत से ऐसे अज्ञात प्रतीक और अदृश्य बिम्ब पड़े हुए हैं जिनकी खोज के द्वारा नयी कविता की सम्भावना का पथ और भी प्रशस्त किया जा सकता है। केदारनाथ सिंह ने लोक से जुड़े हुए प्राकृतिक, सांस्कृतिक, पौराणिक, धार्मिक, ऐतिहासिक तथा दैनिक जीवन से सम्बन्धित उपमानों का प्रयोग किया है। केदार की कविता केवल बोलती ही नहीं, बल्कि दिखती भी है कविता के एक–एक शब्द अपने रूप, रस, गंध, स्पर्श द्वारा अपनी उपस्थिति का प्रत्यक्ष बोध कराते हैं इनकी कविताएँ बिम्बों के लिए जानी जाती हैं। वे स्वयं कविता में बिम्ब को अनिवार्य मानते हैं उनकी कविता में प्रतीकों का सुन्दर इस्तेमाल हुआ है इनकी कविताओं में प्रयुक्त उपमान गँवई गंध जैसे परिचित एवं प्रभावोत्पादक हैं। उपमान योजना में कवि की सूक्ष्म पकड़ का कोई जोड़ नहीं है।

जिन प्रतीकों और बिंबों पर अन्य कवियों की दृष्टि नहीं जाती केदारनाथ जी वहाँ तक पहुंचते हैं। वे प्रकृति के भीतर से ही नए–नए प्रतीक और बिंब गढ़ते हैं। जब से संसार है तब से ही दूब है लेकिन दूब को इस तरह केन्द्र में रखकर लिखने का प्रयास किसी ने भी इस ढंग से नहीं किया। दूब प्रतीक है जीवन की जीवंतता का, बहुत बाकी होने का। तभी तो कवि कहता है–

''अब बहुत कुछ है
अगर बची है दूब.....''

केदारनाथ जी का पूरा बचपन गाँव और यौवन छोटे शहरों में बीता है। ये प्रतीक इन्होंने वहीं से ग्रहण किये हैं। अकाल की भयावहता गाँवों में शहरों की अपेक्षा कहीं अधिक महसूस होती है। शहरों में लोग साधन संपन्न होते हैं, अकाल की विभीषिका को वह झेल लेते हैं, लेकिन गांवों के लोग संसाधनों के अभाव में बहुत कष्ट झेलते हैं। कवि ने इसलिए 'दूब' जैसे कोमल और छोटे प्राकृतिक पदार्थ को प्रतीक के रूप में प्रस्तुत कर आमजन को विषम परिस्थितियों में जीवित रहने का सम्बल दिया है। इसी तरह 'नमक' कविता में 'नमक' अपने आप में स्वयं एक प्रतीक है जो निस्वार्थ भाव से दूसरी चीज़ों की गुणवत्ता और स्वाद बढ़ाने के लिए खुद को समर्पित कर देता है। वैसे ही जैसे पत्नी घर के अन्य लोगों की खुशियों की खातिर कुछ भी करने और सुनने के लिए स्वयं तैयार रहती है। देशज शब्दों का प्रयोग कविता में प्राण का संचार करती है।

आंचलिकता :– केदारनाथ सिंह की भाषा में लोक–जीवन की गंध है यह गंध विशेषकर भोजपुरी अंचल की, जिसमें मिठास है, खनक है भोजपुरी ग्राम्य–परिवेश के अनेक शब्द इनकी कविताओं में प्रयुक्त हुए हैं। यथा पहर, ठाँव, पाहुन, कोरा, छूछा, दीठियों भिनसारे, जिया, जोहना, लुकना आदि ग्राम्यांचल से विशेष लगाव के कारण देशज शब्दों का वे प्रयोग करते हैं। आधुनिक जीवन की विसंगतियों को प्रस्तुत करने में भी देशज शब्दों की प्रभावमयता अदभुत है। इनकी कविता भावुकता से नहीं, समझदारी से लिखी गयी कविता है। वे कम से कम शब्दों का प्रयोग करते हैं और साधारण तथा देशज शब्दों से कविता बनाते हैं। यही कारण है कि उनकी काव्य–भाषा इकहरी नहीं हो पाती है।

शब्द शयन :– शब्दों की कारीगरी में केदारनाथ सिंह अप्रतिम है। उनकी यह विशेषता है कि एक–एक शब्द का चयन अपनी कविताओं में बहुत ही सहजता तथा सरलता से करते हुए उसके महत्व को स्थापित करते हैं। कवि शब्दों के माध्यम से ध्वनि उत्पन्न करते हैं। वे लिखते हैं–

''कहीं एक पत्ता
पट्ट से
गिरता है ज़मीन पर।''

'पट्ट से' के बिना भी पंक्ति पूरी हो सकती थीं लेकिन वह ध्वनि नहीं उत्पन्न हो पाती जिसे कवि उत्पन्न करना चाहता है इसलिए वहाँ पर 'पट्ट' का प्रयोग बहुत व्यंजक है।

12.4 सारांश

निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि केदारजी के अंदर एक किसान का सहजपन है। उनकी कविताओं में रोशनी उनकी अपनी मिट्टी से आती है, वह मिट्टी जो गाँव की है, जहाँ उनका बचपन गुजरा। केदार गाँव में गुजरे जीवन को अपने लिए स्मृतिकोष मानते हैं। लेकिन दुर्भाग्यपूर्ण यह है कि तमाम आधुनिकता के बावजूद गाँव की हालत नहीं सुधरी है। आधुनिकता ने लोक संस्कृति को विकृत किया उसे बाजारू बनाया, और जिस तरह की चेतना का विकास होना चाहिए था, वह गाँव में नहीं हो सका। यह पीड़ा बार–बार केदारनाथ सिंह की रचनाओं में प्रकट होती है। शायद यही वजह है कि वे बड़ी पीड़ा के साथ अपने गाँव के एक किसान लालमोहर को याद करते हैं। वे कहते हैं कि 'मेरी आधुनिकता की एक चिंता यह है कि उसमें लालमोहर कहाँ है।' साथ ही जातिवाद का दंश भी उनकी आधुनिकता में शामिल है, जो उनके अपने गाँव से अब तक नहीं मिटा है। केदार इस तरह की चिंताएं अपनी कई कविताओं में व्यक्त करते हैं। एक उदाहरण नूर मियाँ हैं। 'सन 47 को याद करते हुए कविता को इस संदर्भ में याद किया जा सकता है। दुहराने की जरूरत नहीं कि केदार की कविता में लोक संस्कृति और आधुनिकता के तनाव की अभिव्यक्ति हुई है। गाँव और शहर के बीच के विस्थापन की पीड़ा से लेकर आधुनिकताबोध से उपजे दंश तो कवि के काव्य–कर्म के विषय बने ही हैं, उनकी कविता में एक ऐसे लोक की अनुगूंज है जो अंचलवाद से अलग एक संपूर्ण भारतीय लोक है। लोक और आधुनिकता का तनाव कवि की कविता को एक नई धार देता हुआ उसे एक अलग वैशिष्ट्य प्रदान करता है, और उसकी कविता को एक नया और व्यापक आयाम भी देता है।

12.5 कठिन शब्द

1.	मौलसिरी	2.	परिचयहीनता
3.	अतिसूक्ष्म	4.	कौतूहल
5.	निष्णात	6.	रोमानियत
7.	पलायन	8.	अनागत
9.	अन्तर्विरोध	10.	अतिक्रमण

12.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र. 1. केदारनाथ सिंह की काव्यगत विशेषताएँ लिखिए।

_____

_____

_____

प्र. 2. केदारनाथ सिंह की भाषा शैली पर लेख लिखें।

_____

_____

_____

प्र. 3. केदारनाथ सिंह के काव्य में चित्रित समस्याओं पर प्रकाश डालें।

_____

_____

_____

12.7 संदर्भ ग्रंथ

1. आधुनिक हिन्दी कविता में बिंब विधान – केदारनाथ सिंह
2. उत्तर कबीर और अन्य कविताएं – केदारनाथ सिंह
3. मेरे समय के शब्द – केदारनाथ सिंह
4. आज के लोकप्रिय कवि – विद्या निवास मिश्रा (संपादक)
5. केदारनाथ सिंह और उनका समय – निरंजन सहाय
6. केदारनाथ सिंह का काव्य लोक – डॉ. शेरपाल सिंह

वर्तमान परिदृश्य और केदारनाथ सिंह

13.0 रूपरेखा

13.1 उद्देश्य

13.2 प्रस्तावना

13.3 वर्तमान परिदृश्य और केदारनाथ सिंह

13.4 सारांश

13.5 कठिन शब्द

13.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

13.7 संदर्भ ग्रन्थ

13.1 उद्देश्य

प्रस्तुत अध्याय के अध्ययनोपरान्त आप हिन्दी कविता में केदारनाथ सिंह की कविताओं में चित्रित समस्याओं तथा समकालीन कवियों में उनका स्थान एवं प्रासंगिकता से परिचित होंगे।

13.2 प्रस्तावना

केदारनाथ सिंह समकालीन काव्य परिदृश्य के एक अत्यंत सजग और महत्वपूर्ण कवि हैं। ये उन विरल कवियों में से हैं जिनमें प्रगतिशील कविता, प्रयोगवादी कविता, नयी कविता, साठोत्तरी कविता और जनवादी कविताओं की कई महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ एक साथ विद्यमान हैं। जीवन की हलचलों से संवाद बनाए रखकर ये हर वाद की सीमा और संभावना का संधान अपनी चौकन्नी आलोचकीय दृष्टि, व सतत अध्ययन से करते हुए अपने स्तर पर उसका निर्वाह और आवश्यकतानुसार अतिक्रमण करते हुए रचनारत हैं। तीसरे सप्तक से उन्होंने अपनी काव्य–यात्रा आरम्भ की थी ये तीसरे सप्तक के महत्त्वपूर्ण कवि माने गये। तब से लेकर वर्तमान में भी वे चर्चा के केन्द्र में रहे तथा आलोचना के साथ ही आलोचकों के समक्ष चुनौती

पेश करते रहे। एक पश्चिमी समीक्षक नें एक बार टिप्पणी की थी कि पाउंड और इलियट संस्कृति को लेकर चिन्तित रहे हैं, लोगों को लेकर नहीं जबकि विलियम कार्लस, विलियम टॉमस संस्कृति के साथ लोगों को लेकर भी चिंतित रहे हैं। पिछले दो–तीन दशकों की हिन्दी कविता की बेहतर अभिव्यक्तियों में ये दोनों चिन्ताएं किसी कवि को महत्त्वपूर्ण और प्रासंगिक बनाती हैं। लोगों को लेकर कवि चिंतित नहीं है तो अच्छी कविता नहीं लिख पायेगा पर संस्कृति के प्रति गहरी निष्ठा और उसकी चिन्ता ही लोगों की चिन्ता को अर्थ देती है। कहना न होगा कि केदारनाथ सिंह में संस्कृति और जन की चिन्ता एक दूसरे में ऐसी घुली मिली है कि दोनों को अलग–अलग नहीं किया जा सकता। जहाँ–जहाँ केदार जी भाषा की चिन्ता करते दिखायी देते हैं, वहां वे अनिवार्य रूप से जनता की चिन्ता कर रहे होते हैं।

13.3 वर्तमान परिदृश्य और केदारनाथ सिंह

केदार जी की कविताओं में व्यक्त समकालीन चिंताएं

केदार जी के यहाँ मनुष्य और भाषा एक दूसरे के पर्याय हैं। केदार जी के यहाँ संस्कृति तभी सुरक्षित है जब लोग सुरक्षित हैं। उनके यहां मानवीय विडम्बना भाषा की विडम्बना में तब्दील हो जाती है और कहीं भाषा भी मनुष्य में। केदार जी के काव्य में चित्रित वे लोग हैं जिनकी संख्या देश में बहुत अधिक है। देश के ग्रामीण लोग ही केदार जी के काव्यपरिदश्य के आम लोग हैं और खास लोग भी यही हैं। केदार जी अपने काव्य संकलन 'अकाल में सारस' में 'अंगूठे का निशान' कविता में संस्कृति और जन के अन्तर्सम्बंध की विडम्बना को रेखांकित करते हुए लिखते हैं–

"किसने बनाये
वर्णमाला के अक्षर किसने बनाये
ये काले–काले अक्षर भूरे भूरे अक्षर
किसने बनाये
खड़िया ने
चिड़िया के पंख ने दीमकों ने ब्लैक बोर्ड ने
किसने
आखिर किसने बनाये वर्णमाला के अक्षर
सारे अक्षरों को अंगूठा दिखाते हुए धीरे से बोला
एक अंगूठे का निशान
और एक सोख्ते में
गायब हो गया।"

समकालीन त्रासदियों एवं प्रेम का संगम :– केदारनाथ सिंह के मुहावरों के ताजेपन के पीछे यही रहस्य और शक्ति है। यह उसे नयी चमक और व्यापक अर्थ प्रदान करती है। संहार और विनाश की ताकतों से लड़ने के लिए जिस मानवीय और करुणामय परिवेश की आवश्यकता है केदार जी की दृष्टि में वह गाँव ही है। उनकी वैयक्तिक प्रेम कविताओं में

भी लोक और जन के प्रति गहरी आस्था देखी जा सकती है। वे दुनिया की बातें सोचते हुए अपने प्रेम के बारे में सोचने लगते हैं, उसी प्रकार प्रेम पर सोचते हुए सम्पूर्ण विश्व की बात करने लगते हैं। अर्थात् उनके यहां जगत और प्रेम में कोई अन्तर नहीं है। यहाँ आकर उनका प्रेम गहरे अर्थ में एक सामाजिक गरिमा और व्यक्तित्व प्राप्त करता है। प्रेम पर सोचते हुए दुनिया पर सोचने का बेहतर उदाहरण है उनकी कविता 'हाथ'

''उसका हाथ
अपने हाथ में लेते हुए मैंने सोचा
दुनिया को
हाथ की तरह गर्म और सुन्दर होना चाहिए।''

सामान्य ग्रामीण जनता की बुनियादी समस्याएँ :– जनता के निकट आने के क्रम में वे महानता का निषेध करते हैं। जहाँ जनसामान्य नहीं है, वे वहाँ किसी के होने पर यकीन नहीं करते। सामान्य उनके यहाँ अधिक गरिमामय है। 'ऊंचाई' कविता में वे लिखते हैं

''मेरे शहर के लोगों यह कितना भयानक है
कि शहर की सारी सीढ़ियां मिलकर
जिस महान ऊंचाई तक जाती हैं।
वहां कोई नहीं रहता।''

यह उनके परवर्ती काव्य–सोपान का महत्त्वपूर्ण प्रस्थान बिन्दु है। वे धूल की बात, जमीन और जनता की बात करते हैं तो ऊंचाई को खारिज भी करते हैं। उन्हें शहर की भव्यता भयावह लगती है। मामूलियत की स्थापना की निरंतर कोशिश उनके यहां देखी जा सकती है। मामूली चीजों की उपेक्षा इनके मन में टीस पैदा करती है। उदाहरण के तौर पर 'आंकुसपुर' कविता को ही लें। कस्बे के एकदम छोटे से स्टेशन पर अधिकतर ट्रेनों के न रुकने की कवि के जन में गहरी पीड़ा है। यहाँ तक कि उसे स्टेशन का अस्तित्व ही व्यर्थ लगने लगता है। यह एक गहरी संलग्नता है अपने परिवेश और उसकी सीमाओं के प्रति इस कविता की पक्तियाँ दृष्टव्य हैं–

''सिर्फ दसबजिया यहाँ रुकती है
क्यों
आखिर क्यों?
फिर पृथ्वी पर क्यों है आंकुसपुर।''

विस्थापन का दंश :– केदारनाथ सिंह की कविताओं में विस्थापन का दंश भी प्रमुखता से उभरा है। उन्हें दिल्ली में यह महसूस होता था जैसे वे अपनी जड़ों से कट चुके हैं। वस्तुतः विस्थापन का बोध दिल्ली की उपज है। यह बोध बाद में स्थाई बनता चला गया और गहराता गया। जब उन्हें यह महसूस हुआ कि वे सिर्फ दिल्ली में ही विस्थापित

नहीं हैं बल्कि वे अपने मूल स्थान से भी विस्थापित हो चले हैं। गाँव में भी वे परदेसी हैं, बाहरी व्यक्ति हैं, वे मेहमान हैं, जिन्हें दिल्ली लौट जाना है। विस्थापन का दोहरा दंश उन्हें टीसता और आहत करता है। 'गाँव आने पर' कविता में उसकी अभिव्यक्ति यूं हुई है–

''क्या करूँ मैं?
क्या करूँ, क्या करूं कि लगे
कि मैं इन्हीं में से हूँ
इन्हीं का हूँ
कि यही हैं मेरे लोग
जिनका में दम भरता हूँ कविता में
और यही यही जो मुझे कभी नहीं पढ़ेंगे।''

केदार जी विस्थापन की मनोस्थिति पर स्वयं ही कहते हैं– ''विस्थापन की पीड़ा को मैं बहुत लम्बे अरसे से अनुभव करता हूँ। जो गांव से आये हैं, वे गांव के रहे नहीं, महानगर के हो नहीं सके तो न यहाँ के रहे, न वहाँ के रहे। यह अजब विस्थापन की स्थिति है, जिसे झेलना हमारी नियति है। अभी गांव पिछले दिनों गया था, तो वहां अपना इरिलिवेन्स महसूस हुआ। मैं क्यों आया यहां? मैं क्यों हूँ यहाँ?'' विस्थापन इक्कीसवीं सदी का एक कट सत्य है। जिसे केदारजी भलीभाँति समझते हैं। उनकी बाद कि रचनाएँ विस्थापन के मनोविज्ञान से स्पष्ट रूप से प्रभावित दिखाई पड़ती हैं।

बेजुबानों और प्रकृति को आवाज़ देती कविताएँ :– केदार जी ने बेजान वस्तुओं के चरित्र में एक ऐसी खासियत भर दी है कि वे न सिर्फ परिवेश का जरूरी हिस्सा बन जाती हैं, बल्कि अपने स्तर पर वह उसमें अपनी भूमिका निभाते हुए दिखायी देती हैं। उनका काव्यात्मक धरातल नयी रचनात्मक उर्वरा से सम्पन्न है। ये मनुष्य की तरह न सिर्फ वस्तुओं की शिनाख्त करते दिखायी देते हैं बल्कि उसे मनुष्य के विकास कार्य में अपने स्तर पर संलग्न पाते हैं। मनुष्य और प्रकृति के अन्तर्सम्बंध पर उसी क्रम में वे सार्थक टिप्पणियां भी करते चलते हैं। इनमें न सिर्फ नया रचनात्मक आस्वाद मिलता है बल्कि रुमानवाद की उस अबोध आकांक्षा से हमारा वास्ता पड़ता है जो काव्यात्मक यथार्थ को यथार्थ से अधिक सकारात्मक होने का दावा कर सकता है। प्रकृति के मामूली क्रियाकलापों को गरिमामय और रचनात्मक अर्थ देने के लिहाज से केदार जी हिन्दी कविता में उन विरल कवियों में ठहरते हैं। केदार जी 'यहां से देखो ' काव्य संग्रह के आरम्भ में ही मामूली चीजों की गरिमा को रेखांकित करना कविता का एक मूल्य स्वीकार करते हैं 'कविता क्या है' कविता में वे लिखते हैं–

''कविता क्या है
बालों के गिरने पर नाई की चिन्ता
एक पत्ती के गिरने पर
राष्ट्र का शोक''

केदार जी के यहां उपलें की गंध फूल की गंध से बेहतर है। 'घुलते हुए गलते हुए' शीर्षक कविता में वे लिखते हैं–

''कहां से आती है।
उपलों से छनती हुई
फूल की खुशबू
उपलों की गन्ध मगर फूल की गंध से
अधिक भारी
अधिक उदार।''

अरुण कमल ने यहां से देखो पुस्तक के फ्लैप पर ठीक ही लिखा है ''जो नष्ट हो जाता है वह कितना ही शूद्र क्यों न हो उन्हें दुखी करता है। (कीड़े की मृत्यु)। जीवन के प्रति वह सम्मान ही केदार जी के इस संग्रह की मुख्य अन्तर्वस्तु है।''

दुख का समाजशास्त्र :– उनके यहाँ दुख भी एक दूसरे से जोड़ता है। एक दूसरे के अधिक निकट ले आता है। 'दुख' कविता में वे लिखते हैं–

''इस तरह छोटे–छोटे दुखों की
एक महान चारपायी
न जाने कब से बुनी जा रही है
मेरे शहर में
और तुम्हारे शहर में भी।''

यहाँ दुख केवल मेरे शहर का मामला नहीं है, तुम्हारे शहर का भी मामला है। केदार जी दुख को एक दूसरे के बीच का मामला नहीं रहने देते, इसे समूह के बीच इस तरह प्रस्तुत करते हैं कि वह उनकी लय में शामिल हो जाता है, जैसे वह उन्हीं का अजीज हो। वे लिखते हैं–

''दुख का कोई पहाड़ नहीं होता,
कोई समुद्र नहीं होता दुख सिर्फ हाथ होते हैं
छोटे–छोटे
जो दिन भर रस्सी की तरह बुनते रहते हैं दुख को।''

अपने प्रिय कवि निराला पर लिखते हुए वे दुख को याद करते हैं जो उनके जीवन की सहचरी रही

''रोज कहीं टाँके पड़ते हैं
रोज उधड़ जाती है सीवन
दुखता रहता है अब जीवन!''

केदारनाथ सिंह का दुख वैयक्तिकता का अतिक्रमण करने के कारण करुणा में तब्दील हो जाता है। वे गौतम बुद्ध की अहिंसा और करुणा से प्रभावित दिखाई देते हैं। उन्हें लगता है बुद्ध पर सोचना अपने ही समाज और अपने ही लोगों पर सोचना है। केदार जी प्रासंगिकता का रहस्य उनकी करुणा में भी छिपा है जो उनकी कविता को अधिक गरिमामय भी बनाता है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि केदार जी बुद्ध के साथ–साथ कबीर से भी प्रभावित रहे हैं। उनका साहित्यिक चिन्तन मार्क्स, कबीर और बुद्ध से बार–बार टकराता है और उन्हीं के बीच अपना मार्ग प्रशस्त करता नज़र आता है, जो परवर्ती काल में अध्यात्म की तरफ झुका हुआ भी दिखायी पड़ता है।

किसान जीवन का यथार्थ :– कई वर्षों से महानगर में रहने के उपरान्त भी केदारनाथ सिंह का हृदय गांव की संस्कृति में रचा बसा है। केदारनाथ सिंह की कविता का विषय क्षेत्र अत्यन्त सहज एवं विस्तृत है। इन्होंने गाँव की साधारण से साधारण वस्तुओं को कविता का विषय बनाया क्योंकि उनका अनुभव संसार व्यापक एंव गहरा है, 'आखिन देखी' है। वे यथार्थ की मिठास एवं कड़वाहट में जीते हैं और उनकी कविता यथार्थ की अनुभूति और मुक्ति की कामना तथा आस्था और विश्वास के सहारे जीती है। केदारनाथ सिंह जब भारतीय कृषक जीवन की पीड़ा का यथार्थ वर्णन करते हैं तो प्रेमचन्द याद आते हैं। प्रेमचंदीय संवेदना का विस्तार केदार की कविताओं में दिखाई देता है। किसान के आर्थिक दोहन को 'दाने' शीर्षक कविता में अत्यन्त प्रभावित ढंग से प्रस्तुत किया है।

''नहीं
हम मंडी नहीं जाएँगे
खलिहान से उठते हुए
कहते हैं दाने
जाएँगे तो फिर लौटकर नहीं आएँगे
जाते जाते
कहते आते हैं दाने।''

यथार्थ और रुमानियत का संगम :– केदार जी क्षुब्ध पीढ़ी के आक्रामक कवि नहीं हैं वे यथार्थवादी रुमानियत के कवि हैं। उनके पास उल्लासपूर्ण बड़बोलापन नहीं है। वे जमीन के पकने की प्रक्रिया को उद्दीप्त करने की दिशा में संतुलित और सुनियोजित आंच के पक्षधर हैं। वे उस समय की प्रतीक्षा के प्रति आस्थावान हैं जब रुखानी का जरा सा हिलना भी निर्णायक हो सकता है। वे पशुओं के बुखार के मौसम की नब्ज पहचानते हैं इसीलिए अतिरिक्त अधीरता की कमजोरी से बचे हुए हैं। शायद यही कारण है कि उनकी कविताएँ कोई लम्बी यात्रा नहीं कर पातीं। हर बार उनकी कविताएँ नये सिरे से अपनी सड़क पार करती हैं। इस विश्वास के साथ कि शायद सड़क के उस पार दुनिया कुछ बेहतर हो गयी है किन्तु आस्था का अक्षय पाथेय मोहभंग के बावजूद उन्हें संत्रस्त नहीं करता। वे अपनी उदास पृथ्वी को प्रियतमा के गर्म हाथ की तरह सुन्दर होने की कामना करते हैं। केदारनाथ सिंह वैचारिक आग्रह के शिकार कभी नहीं रहे। उनके पास प्रगतिशील दृष्टि जरूर है, लेकिन अन्धानुकरण नहीं है। उनके वैचारिक आग्रहों के निर्णायक देश का मौजूदा परिवेश, उसकी विडम्बनाएँ और काव्यात्मक अनुभव हैं। वे अपने जीवनानुभवों से अधिक कुछ रचते हैं। अपने अनुभवों में वे दूसरों के अनुभवों को तो जोड़ते ही हैं बल्कि

उन अनुभवों की अभिव्यक्ति के क्रम में उनकी भाषा के संस्कार और काल्पनिकता को भी शामिल करते हैं। इन्हीं अर्थों में हम यह कह सकते हैं कि केदार जी की कविताओं में न सिर्फ एक नया रचनात्मक आस्वाद है, बल्कि एक नया जीवन आस्वाद भी है। उनके यहां ''आत्मा ठण्डे ठण्डे जल से बात करती हुई देखी जा सकती है। बालू के नर्म–नर्म तौलिये से देह पोछी जा सकती है।'' केदार जी के लिए कविता हथियार नहीं है, किन्तु ढाल जरूर है। वह ढाल जो मनुष्य की निरन्तर जर्जरित होती हुई आस्था विश्वास और जिजीविषा को एक आड़ देती है। इस दृष्टि से वे विध्वंस के नहीं निर्माण के कवि हैं।

केदारनाथ सिंह जी का समकालीन पीढ़ी पर प्रभाव :– शमशेर बहादुर सिंह ने बहुत पहले 'अभी बिल्कुल अभी' की समीक्षा करते हुए लिखा था कि केदारनाथ सिंह युवकों के प्रिय कवि हैं। शमशेर की यह पारखी दृष्टि अपने ऐतिहासिक क्रम में ब्याज सहित प्रतिफलित हुई । आज केदार जी युवकों के प्रिय और आदर्श कवि के रूप में जाने जाते हैं। परवर्ती पीढ़ी पर केदार जी का प्रभाव परिलक्षित किया जा सकता है। केदारनाथ सिंह की कविताओं में भाषा और अभिव्यक्ति के बीच एक गहरा तादात्म्य है जिससे एक–एक विलक्षण तराश और कलात्मकता आयी है जिसका अनुकरण उनकी परवर्ती पीढ़ियों के कई कवि करते नज़र आते हैं। मंगलेश डबराल की कविता पर बात करते हुए इसकी प्रकारांतर से चर्चा करते हुए विनोद भारद्वाज लिखते हैं–''मंगलेश डबराल बहुत महत्वाकांक्षी कविता नहीं लिखते। उनकी बहुत कविताओं को पढ़ते हुए किसी तराशे हुए मूर्तिशिल्प की याद आती है। यह शिल्प काष्ठ, संगमरमर या किसी भी तरह के पत्थर में हो सकता है। खुरदरे टेक्सचर का इस्तेमाल मंगलेश को पसंद नहीं है। अभिव्यक्ति और भाषा की सफाई उनकी काव्यकला का बुनियादी गुण है। पूर्ववर्ती कवियों में यह गुण केदारनाथ सिंह में सबसे अधिक नजर आता है।''

सामाजिक चेतना के शुष्क धरातल को संगीतात्मक बनाने के लिहाज़ से भी केदार जी जाने जाते हैं जो पाठक को बरबस आकृष्ट करता है। साथ ही शब्दों की मितव्ययिता ने उनकी कविता को अधिक सारगर्भित बनाया है। इनका जिक्र कतिपय अन्य कवियों के साथ करते हुए नामवर सिंह कहते हैं–संगीतधर्मी प्रयोगों की झीनी खूबसूरती से ढकी हुई सामाजिक चेतना के कवि शमशेर ने नयी कविता को सम्भवतः सबसे अधिक स्वर सम्पन्न बनाया है। इनके सधर्मा कुछ और नये नाम जुड़ते हैं जिनमें सर्वेश्वर, केदारनाथ सिंह, अजित कुमार तथा सूर्य प्रताप के नाम मुख्य हैं।

केदारजी की विकास यात्रा :– केदार जी ने काव्य यात्रा के लगभग आरम्भिक दौर में ही प्रर्याप्त लोकप्रियता प्राप्त कर ली थी और इसमें उनकी हर कृति के साथ इजाफा होता रहा। उनके आरम्भिक दौर की चर्चा करते हुए अजीत कुमार लिखते हैं– ''सन् पचास के आस–पास प्रतीक'' में प्रकाशित अपनी दो–एक कविताओं से ही केदारनाथ सिंह को जो ख्याति मिली थी वह अनेक कवियों को जीवन भर नसीब नहीं होती। 'झरने लगे नीम के पत्ते' 'छाने लगी उदासी मन मन में', 'आज पिया पिछवारे पहरू ठनका किया' जैसी उनकी उस समय की कविताओं में इतनी ताजगी थी और केदार उन्हें सुनाते भी ऐसे भावभीने स्वर में थे कि लगभग चालीस साल बाद प्रकाशित उनके चौथे और उल्लेखनीय काव्य संग्रह 'अकाल में सारस' (1983–87 की इकसठ कविताएं) पढ़ते हुए भी मन प्रायः उन्हीं कविताओं में जा रमता है। केदार जी प्रारंभ से ही अध्ययनशील व्यक्ति रहे हैं। वे पाश्चात्य व भारतीय कविता के गंभीर अध्येता माने जाते हैं। उन्होंने न सिर्फ उन पर लिखा है बल्कि कई कवियों की रचनाओं का अनुवाद भी किया है। विश्व कविता से उनकी रचनाशीलता के बीच लगातार संवाद रहा है। विश्व कविता के आलोक में वे अपनी रचनाशीलता को मांजते एवं विकसित करते रहे।

13.4 सारांश

निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि केदार जी का काव्य–संसार एक ऐसे कवि का संसार है जो विश्व कविता के समक्ष अपनी तमाम विशिष्टताओं के कारण सम्पूर्ण भारतीय कविता का प्रतिनिधित्व करता है। केदार जी आलोचक नहीं हैं किन्तु विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित उनकी टिप्पणियों व समीक्षाओं ने हिन्दी आलोचना साहित्य को समृद्ध किया है और किसी हद तक मार्गदर्शन भी किया है। समकालीन रचना जगत की चुनौतियों व संघर्षों को उनकी टिप्पणियां शिद्दत से उठाती रही हैं और आलोचकों का ध्यान रचनाशीलता के नये विमर्शों के प्रति आकृष्ट कराती रही हैं। उनके साहित्य व साहित्येतर सरोकारों व संस्मरणात्मक निबंधों की कतिपय पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं जिनमें 'मेरे समय के शब्द', 'कब्रिस्तान मैं पंचायत' व उनकी शोधपरक पुस्तकों 'कल्पना और छायावाद' तथा 'आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब विधान' शामिल हैं। उनके साक्षात्कारों की पुस्तक 'मेरे साक्षात्कार' को भी इसी से जोड़कर देखा जाये तो उनकी टिप्पणियों में स्वयं उनका वह काव्य–संसार झांकता दिखायी देता है, जो उनकी कविताओं का पूरक है वे मामूली और गैर मामूली लोग दिखायी देते हैं जिनकी चिन्ता उनकी कविताओं की चिन्ता भी है। ये मुद्दे व सरोकार साफ दिखायी देंगे जिनसे छनकर उनके बिम्ब कविताओं में प्रवेश करते हैं। वह संसार दिखायी देगा जो कविताओं में अमूर्त है। इस प्रकार केदार जी का लेखन भी उनके व्यक्तित्व व काव्य संसार से गहरे तौर पर आबद्ध है और उसका पूरक भी।

13.5 कठिन शब्द

1. विरल
2. खारिज
3. भयावह
4. भव्यता
5. अतिक्रमण
6. सुनियोजित
7. संतुलित
8. अन्धानुकरण
9. विध्वंस
10. कतिपय

13.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र. 1. वर्तमान परिदृश्य में केदारनाथ सिंह की कविताओं का मूल्यांकन करें।

_____

_____

_____

प्र. 2. समकालीन कवियों में केदारनाथ सिंह का स्थान निर्धारित कीजिए।

_____

_____

_____

प्र. 3. केदारनाथ सिंह की विकास यात्रा पर टिप्पणी करें।

_____

_____

_____

13.7 संदर्भ ग्रंथ

1. उत्तर कबीर और अन्य कविताएं – केदारनाथ सिंह
2. मेरे समय के शब्द – केदारनाथ सिंह
3. मेरे साक्षात्कार – केदारनाथ सिंह
4. आधुनिक कवि – विश्वम्भर मानव
5. आज के लोकप्रिय कवि – विद्या निवास मिश्रा (संपादक)

निर्धारित कविताओं (नमक, बुद्ध से, अकाल में दूब, उम्मीद नहीं छोड़ती कविताएँ, रोटी) में संवेदनागत और शिल्पगत वैशिष्टय।

14.0 रूपरेखा

14.1 उद्देश्य

14.2 प्रस्तावना

14.3 निर्धारित कविताओं में संवेदनागत और शिल्पगत वैशिष्टय

14.4 सारांश

14.5 कठिन शब्द

14.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

14.7 संदर्भ ग्रंथ

14.1 उद्देश्य

इस अध्याय के अध्ययनोपरान्त आप केदारनाथ सिंह की चयनित पाँच कविताओं के माध्यम से स्त्री जीवन का यथार्थ, बढ़ती हिंसात्मक प्रवृति, मनुष्य की जिजीविषा एवं संघर्ष तथा ग्रामीण परिवेश और उनके यथार्थ से अवगत हो सकेंगे।

14.2 प्रस्तावना

केदारनाथ सिंह मूलतः मानवीय संवेदना के कवि हैं और इन्होंने हिन्दी काव्य जगत में अपनी एक अलग पहचान बनाई है। आज़ादी के बाद के जिन कवियों ने समकालीन कविता को एक नई दिशा प्रदान की उनमें केदारनाथ सिंह का नाम प्रमुखता से लिया जाता है। केदारनाथ जी की भाषा–शैली के संदर्भ में अगर बात की जाए तो उसमें सहजता, बिंबमयता, और वैचारिकता ये तीनों गुण मुख्य रूप से उद्घाटित हुए हैं। विशेष रूप से इन्होंने बिंब विधान पर अधिक बल दिया है जिससे इनकी कविता सुन्दर और यथार्थ के अधिक निकट दिखाई देती है।

14.3 निर्धारित कविताओं का संवेदनागत और शिल्पगत वैशिष्टय

'नमक' कविता की संवेदना :– 'उत्तर कबीर और अन्य कविताएँ' कवि केदारनाथ सिंह का सर्वश्रेष्ठ कविता संग्रह है। इसका प्रकाशन 1995 ई० में हुआ। इस संग्रह में संकलित उनकी एक विशिष्ट कविता है 'नमक'। इस कविता में नायक स्वयं 'नमक' है, जो अपने अस्तित्व को खोजता हुआ इधर–उधर भटकता है। एक शाम महानगर के एक मोहल्ले से गुजरते हुए वह चुपके से एक सुंदर शैली में सुसज्जित घर में घुस गया तथा किसी चम्मच की सहायता से हौले से दाल में घुल गया। उस परिवार के भोजन को सुस्वादु बनाने के लिए नमक ने खुद को घुला लिया। वह संतुष्ट था। उस घर की स्त्री में स्वयं को रखकर सबकी तृप्ति की बांट जोह रहा था। लेकिन भोजन की टेबल पर गृहस्वामी का पुरुषत्व हौले से जागा– ''दाल फीकी है''। फिर व्यक्ति ने आक्रोशित हो अपने अहंकार का प्रदर्शन करते हुए लगभग चखते हुए कहा– ''मैं कहता हूँ फीकी है।'' पूरे परिवार और उस मर्द का स्वाद बढ़ाने के लिए स्वयं को घुला देने वाला नमक एवं स्त्री अवाक् हो कर चुप रही, बच्चे तथा कोने में बैठा कुत्ता अपलक एक–दूसरे को ताकता रहा। पुरुष कुर्सी छोड़ कर उठ गया, धीरे–धीरे कुर्सियों पर से सब उठ गए। नमक कहीं नही जा सकता था क्योंकि वह भोजन में घुल चुका था। इसलिए वह चुपचाप बैठा रहा, उसने आँख उठाकर बच्चों की ओर देखा, बच्चे ने कुते और कुत्ते ने जाती हुई स्त्री की ओर देखा और आखिर मैं नमक इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि–

''न सही दाल
कुछ–न–कुछ फीका जरूर है
सब सोच रहे थे
लेकिन वह क्या है''

यह कवि की दृष्टि से बेहद चुनौतीपूर्ण सवाल है कि आखिर वह क्या है जो फीका है। वस्तुतः पति–पत्नी, बच्चों के बीच प्रेम का जो रिश्ता होता है, वह फीका है पर स्थिति ऐसी आ गयी है कि लाख सोचने के बावजूद किसी भी व्यक्ति को यह बात समझ नहीं आती है। यह कविता मनुष्य समाज की बदलती मनःस्थिति पर भी सवालिया निशान लगाती है।

सन् 1990 ई० में लिखी गयी यह कविता आज के टूटते पारिवारिक जीवन में कितनी प्रासंगिक है, इसका मूल्यांकन सहज ही किया जा सकता है। हिन्दी साहित्य में अस्मितामूलक विमर्श का यह प्रारम्भिक दौर था। वस्तुतः यह कवित्ता कई मोर्चों पर संघर्ष करती नज़र आती है। स्त्री अस्मिता के प्रश्न तो सम्पूर्णतः इस कविता में मुखरित होते हैं। एकाकी परिवार का टूटन भरा वातावरण कवि के विचारों के केंद्र में है। जहाँ स्त्री के हृदय को समझने वाला कोई नहीं है। चूँकि केदार जी ग्रामीण पृष्ठभूमि से लगाव रखते हैं और बार–बार उन्हें ग्राम्य जीवन का ख्याल आता है, वे जानते हैं कि इन स्थितियों में बाप, दादा, सास, ससुर आदि कैसे माहौल को संभाल लेते हैं। महानगरों में पारिवारिक मूल्यबोध जिस तीव्रता से टूट रहे हैं, उसे देख कर कवि इस कदर व्यथित होते हुए कि लिखता है–

''उस समूचे घर में एक कुत्ते के अलावा
इसे कोई नहीं जानता।''

स्पष्ट है कि कवि को मानवेतर प्राणी इस उत्तर आधुनिक जीवन में मनुष्यों से कहीं ज्यादा संवेदनशील दिखाई पड़ते हैं।

शिल्प :– शिल्पगत और भाषागत दृष्टि से देखा जाए तो केदारनाथ सिंह जी की यह कविता बहुत सरल भाषा में रचित है। केदार जी अपने बिंबों और प्रतीकों के प्रयोग के लिए प्रसिद्ध हैं लेकिन इस कविता में उनकी सहजता परिलक्षित होती है। महानगरीय समाज का जो यथार्थ है उसे काव्यबद्ध करते हुए उन्होंने कठिनाई का सहारा नहीं लिया है। प्रवाहमयी, सहज, सरल और सुगम भाषा में उन्होंने इस कविता को ऐसा आकर्षक रूप प्रदान किया है जो जन सामान्य को बिना जतन किये समझ आ सके। शब्दों की कारीगरी में केदारजी अप्रतिम हैं। वे एक–एक शब्द की महता स्थापित करते हैं। निम्न पंक्तियों में 'अक्टूबर' माह के माध्यम से घर के पूरे वातावरण का परिचय दिया हैं निम्न पंक्तियों में यह भाव दृष्टव्य है–

''घर सुन्दर था
जैसा की आम तौर पर होता है
अक्टूबर के शुरू में।''

अक्टूबर संपूर्ण बिंब खड़ा करने में सक्षम है। अक्टूबर वह महीना है, जिसमें न ज्यादा गर्मी होती है, न ही ज्यादा सर्दी। शरद ऋतु हर ओर सुंदरता बिखेरती है। ऐसे खूबसूरत महीने से घर की सुन्दरता की तुलना करना यह बताता है कि उनकी दृष्टि प्रकृति के हर पक्ष पर थी यही कारण है कि उनके बिंबों में जीवंतता है। 'नमक' स्वयं अपने आप में एक प्रतीक है जो निस्वार्थ भाव से दूसरी चीज़ों की गुणवत्ता और स्वाद बढ़ाने के लिए खुद को समर्पित कर देता है। वैसे ही जैसे पत्नी घर के अन्य लोगों की खुशियों की खातिर कुछ भी करने और सुनने के लिए स्वयं तैयार रहती है। देशज शब्दों का प्रयोग कविता में प्राण का संचार करता है।

'बुद्ध से' कविता की संवेदना :– यह अनायास नहीं है कि केदारनाथ सिंह के लगभग हर काव्य संग्रह में गौतम बुद्ध पर कविता रहती है। गौतम बुद्ध का मूल संदेश करुणा ही है। वे बुद्ध से लेकर कबीर तक की यात्रा करते दिखायी देते हैं। बुद्ध सी करुणा और कबीर सी आक्रामकता दोनों मिल–जुल कर उनकी काव्य–संवेदना को एक नयी दिशा प्रदान करती है। बुद्ध के संदर्भ में उन्हें पोखरण में किया गया परमाणु परीक्षण भी याद आता है जिसका नाम रखा गया–'बुद्ध की मुस्कान'। पोखरण में हुए विस्फोट को 'बुद्ध की मुस्कान' नाम देने को वे भाषा का ध्वंस करार देते हैं। अपनी महत्त्वपूर्ण कविता 'बुद्ध से' में कवि बुद्ध से संवाद करते हुए उन्हें आज की संवेदनहीनता, जड़ता और निरंतर बढ़ती जा रही हिंसा की घटनाओं से जोड़ देते हैं। तथाकथित सभ्य समाज किस तरह कमजोर–कोमल चीजों को अपनी स्वार्थ–सिद्धि के लिए तहस–नहस करता जा रहा है, कवि उसे रेखांकित करता है–

''भन्ते, आज सोमवार है
इस नयी सदी के पहले सप्ताह का
पहला दिन
मैं अपने शहर के लगभग बीचोबीच खड़ा हूँ
और आपसे कुछ कहने के लिए
शब्द तलाश रहा हूँ
मेरे चारों ओर घना कोहरा है

उतना ही घना जितना कल था
यानी पिछली सदी में।''

इन पंक्तियों में एक साथ कई पीड़ाओं को कवि व्यक्त करने की कोशिश करता दिखाई पड़ता है। वह देख रहा है नयी सदी का पहला सूर्योदय भी कुहासे के बीच खो रहा है। सवाल यह उठता है कि यह कुहासा किसका प्रतीक है। सिर्फ सदी बदलने से समस्याएं नहीं खत्म हो जाती हैं, कवि यह बात समझता है। सम्पूर्ण विश्व में साम्राज्यवादी ताकतों के मजबूत होने से विश्व आतंकवाद से लेकर गृहयुद्ध तक की आग में जल रहा है। धुआँ, कुहासा और त्रासदी इतनी गहरी है कि कवि को उपयुक्त शब्दों की तलाश करनी पड़ती है। इस नई सदी में समस्याएं उत्तरोत्तर विकराल होंगी, यह कवि जानता है। इसीलिए वह एक ऐसा शब्द तलाशता है जिसमें मानव–जीवन की सारी त्रासदियाँ शामिल हो जाएं। तमाम त्रासदियों के बीच उन्हें बुद्ध का स्मरण होता है और वे कहते हैं–

''अभी पिछले ही सप्ताह मैं सारनाथ गया था
वही आपका प्रिय मृगदाव –
और हैरान रह गया यह देखकर
कि वहाँ के सारे हिरन मार डाले गए हैं।
और अब वहाँ सिर्फ एक मादा घड़ियाल है
जो अपने अंडों की तलाश में
हिंडोर रही है रेती।''

केदारनाथ सिंह जिस क्षेत्र के रहने वाले थे तथा जहां रहकर उन्होंने अध्यापन–कार्य शुरू किया, उसके समीप ही कुशीनगर है। यहां बुद्ध ने अपना अंतिम समय बिताया था। यहीं उनकी मृत्यु हुई थी। यह स्थान भी केदारनाथ जी को प्रिय था, बल्कि एक समय वे यहां बसना चाहते थे। स्पष्ट है कि केदारनाथ सिंह बुद्ध के मार्ग पर चलने वाले पथिक थे। आज के समाज की सच्चाई व्यक्त करते हुए वे लिखते हैं–

''उंगलिमाल छुट्टा घूम रहा है शहर में
और सुजाता अपने शहर के
किसी छुतहा अस्पताल में भर्ती है।''

दुर्दांत डकैत के रूप में बुद्ध के समकालीन कुख्यात रहे अंगुलिमाल की तरह आज कई प्रकार के डकैत खुलेआम घूम रहे हैं। कवि को अफसोस इस बात का है कि कोई बुद्ध नहीं दिखाई पड़ता है जो ऐसे अंगुलिमालों को समझा सके।

सम्पत्ति हड़पने वाले डकैत हों, स्त्रियों की इज्जत–अस्मत लूटने वाले डकैत हों या वोट हड़पने वाले डकैत हों, सभी के सभी सामान्य जनता के लिए दुःस्वप्न सुरीखे ही हैं। वे किसी के भी शरीर और हृदय को छलनी कर अस्पताल पहुंचा सकते हैं। दुखद पहलू यह है कि इन समस्याओं के निवारण का कोई सार्थक उपाय कवि को नहीं सूझता। कविता की अंतिम पंक्तियों में वे कहते हैं–

''दुःख है
तो उसका निदान भी होगा ही
पर महाभिषग क्या निर्वाण के अलावा
इसका कोई इलाज नहीं ?''

यह पंक्ति न केवल कवि केदारनाथ सिंह के लिए आजीवन चुनौती बनी रही बल्कि हम सब के लिए आज भी यह चुनौती ही है। दुख के निवारण का कोई स्पष्ट पथ उन्हें दूर–दूर तक नज़र नहीं आता। सम्भवतः इसीलिए वे कविता की अंतिम पंक्तियों में इसी निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि 'निर्वाण' ही एकमात्र विकल्प है जो हमें दुखों के सागर में डूबने से बचा सकता है।

शिल्प :– कविता का शिल्प केदार जी की अन्य कविताओं की तरह प्रतीकों से परिपूर्ण है, भाषा सुगम और संगठित है, शब्दों का संयोजन उत्तम कोटि का है।

ऐतिहासिक पात्रों और शब्दों का प्रयोग करके केदारनाथ सिंह ने इस कविता की अर्थवत्ता में वृद्धि की है। कविता की ये पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं–

''पता तो यह चला भन्ते
कि उंगलिमाल छुट्टा घूम रहा है शहर में
और सुजाता अपने शहर के
किसी छूटहा अस्पातल में भर्ती है।''

प्रस्तुत पंक्तियों द्वारा कवि ने आज के किसी डकैत, आतंकी, अपराधी का नाम न लेकर ऐतिहासिक डाकू अंगुलिमाल को प्रतीक के रूप में इस्तेमाल किया है। आज जबकि उस युग की अपेक्षा अपराध में कई गुणा ज्यादा वृद्धि हुई है तब कवि का यह कहना कि अंगुलिमाल जैसे कई डकैत छुट्टा घूम रहे हैं शहर में यथार्थ स्थिति का परिचायक है। हत्या, अपहरण, बलात्कार जैसे दुष्कर्म बुद्ध के इस देश में खुले रूप में हो रहे हैं लेकिन बुद्ध इसकी सुध नहीं ले रहे। बिडम्बना यह है कि 'सुजाता' जो ज्ञान का प्रतीक है जिसकी खीर खाने के बाद ही स्वयं बुद्ध को ज्ञान की प्राप्ति हुई वैसे ज्ञान आज छुटहा अस्पतालों में भर्ती हैं, जिन्हें कोई छूना नहीं चाहता, जिनके बारे में यह धारणा बन गयी है कि वे समाज में संक्रामक रोग का प्रचार करेंगे। केदारनाथ सिंह समाज की इन कटु सच्चाइयों को कविताओं में प्रतीकों के माध्यम से स्पष्ट करते हैं कविता में 'सारनाथ' भी प्रतीक के रूप में ही इस्तेमाल किया गया है। कुल मिलाकर देखा जाए तो कविता इस उत्तर आधुनिक समय में बुद्ध की प्रासंगिकता को सिद्ध करती हुई दिखाई देती है।

'अकाल में दूब' कविता की संवेदना

भारतीय काव्य संसार में केदारनाथ सिंह 'धन्यवाद' के कवि हैं। उनके पास स्वीकार का बड़ा हृदय है, जहाँ यथार्थ की जमीन पर परम्परा–आधुनिकता, सुख–दुःख, गाँव–शहर, खेत और बाजार एक साथ रहना चाहते हैं। केदार जी की कवितायें जीवन की तमाम चुनौतियों में उम्मीद की खोज करती दिखाई पड़ती हैं। यह उम्मीद मानवता के साहस विश्वास और जिजीविषा की गवाही है। 'अकाल में सारस' ऐसी ही कविताओं का संग्रह है, जिसमें 1983–87 के मध्य रची गयी कवितायें

संकलित हैं। साहित्य अकादमी से पुरस्कृत यह संकलन कविता को भाषा और भाव दोनों ही स्तर पर 'भारत' की जमीन पर खड़ा करता है। ये कविताएँ पाठक के साथ संवाद करती हैं और कविता और मनुष्य के बीच के शाश्वत सम्बन्ध को व्यक्त करती हैं। केदार जी कविता में परम्परा और आधुनिकता के मध्य विरोध की बजाय संवाद का रिश्ता देखते हैं। अतीत वर्तमान पर अपने विचार थोपता नहीं है। एक किसान बाप अपने बेटे को जीवन के सूत्र देता है लेकिन उसकी अनिवार्यता को खारिज करता है, जिससे जीवन में विकल्प बने रहें, जहाँ से विकास का रास्ता फूटता है। कवि जमीन से जुड़ने का 'एक छोटा सा अनुरोध' भी करता है पर उसकी भाषा आसमान के इंकार की नहीं है।

केदार जी के लिए दुःख शिकायत की बजाय जागृति पैदा करता है। इस जागृति में स्वप्न के बजाय यथार्थ उनका अधिक साथ देता है। 'अकाल में सारस' और 'अकाल में दूब' उम्मीद की कविताएँ हैं। रोहिताश्व ने 'मिट्टी की रोशनी' में कहा भी है कि 'अकाल में दूब' कविता विपरीत स्थितियों में सूखे अकाल की स्थिति में दूब के अगर बचे रहने की गवाही देती है, तो यह अकाल की विषमता के समानान्तर आशा–विश्वास और जीवन सौन्दर्य की अनुभूति है, यहां नश्वरता के बरक्स अनश्वरता का सौन्दर्य बोध गतिशील है।

केदार जी की अकाल पर लिखी दोनों कविताओं में उनकी नाटकीय शैली विद्यमान है। 'अकाल् में दूब' में पूरा दृश्य एक समारोह जैसा है जिसमें चित्र और स्थितियां बोलती हैं, मंत्रणा करती हैं और अकाल में यदि दूब बची है तो जीवन की आशा भी बची है। यह कविता निष्कर्षतः पाठक को पहुंचाती है। यह जीवन की वह कुंजी है जिस तक केदार जी की कई कविताएं पहुंचती हैं अथवा पहुंचाने की कोशिश करती हैं। यहां संवेदना के अकाल की स्थिति में दूब है। 'लोक संवेदना में अकाल के दिनों में दूब पानी का, जीवन का, प्राण तत्व का पर्याय है। 'अकाल में दूब' कविता में यह ध्वनित होता है–

''कहते हैं पिता
ऐसा अकाल कभी नहीं देखा
ऐसा अकाल कि बस्ती में
दूब तक झुलस जाय
सुना नहीं कभी
————————
अचानक मुझे दिख जाती है
शीशे के बिखरे हुए टुकड़ों के बीच
एक हरी पत्ती
दूब है
हां–हां दूब है–
पहचानता हूं मैं
लौटकर यह खबर
देता हूं पिता को
अंधेरे में भी

दमक उठता है उनका चेहरा
अभी बहुत कुछ है
अगर बची है दूब।''

पहली नजर में किसी को लग सकता है कि विषय वस्तु के चयन के तहत ये कविताएं यथार्थपरक होते हुए भी अन्ततः कलारूप को ही अधिक तरजीह देती प्रतीत होती है, किन्तु ऐसा है नहीं। दरअसल बाह्य उपकरणों, कवि के औजारों को ही कथ्य मान लेने से ऐसा भ्रम होता है केदार जी के यहां वस्तु जगत एक भाव जगत तक ले जाने का माध्यम है यहां भी ऐसा ही हुआ है।

शिल्प :– प्रतीक और बिम्ब योजना में कवि केदारनाथ सिंह सिद्धहस्त है। वे प्रकृति के भीतर से ही नए–नए बिम्ब गढ़ते हैं। जिन प्रतीकों और बिंबों पर अन्य कवियों की दृष्टि नहीं जाती केदारनाथ जी वहाँ तक पहुंचते हैं। जब से संसार है तब से ही दूब है लेकिन दूब को इस तरह केन्द्र में रखकर लिखने का प्रयास किसी ने भी इस ढंग से नहीं किया। दूब प्रतीक है जीवन का जीवंतता का बहुत बाकी होने का। तभी तो कवि कहता है–

''अब बहुत कुछ है
अगर बची है दूब....।''

केदार जी का पूरा बचपन गाँव और यौवन छोटे शहरों में बीता है। ये प्रतीक इन्होंने वहीं से ग्रहण किये हैं। अकाल की भयावहता गाँवों में शहरों की अपेक्षा कहीं ज्यादा महसूस होती है। शहरों में लोग साधन संपन्न होते हैं, अकाल की विभीषिका को वह झेल लेते हैं, लेकिन गाँवों के लोग संसाधनों के अभाव में बहुत कष्ट झेलते हैं। कवि ने इसलिए 'दूब' जैसे कोमल और छोटे प्राकृतिक पदार्थ को प्रतीक के रूप में प्रस्तुत कर आमजन को विषम परिस्थितियों में जीवित रहने का सम्बल दिया है।

उम्मीद नहीं छोड़ती कविताएँ की संवेदना

'अकाल में सारस' कविता संग्रह की एक महत्त्वपूर्ण कविता है 'उम्मीद नहीं छोड़ती कविताएँ'। कवि केदारनाथ सिंह की इस कविता में द्वंद्व को महसूस किया जा सकता है। सृष्टि के शाश्वत और गतिमान चक्र को कवि ने अनोखे अंदाज में प्रस्तुत किया है। कविता की आरंभिक पंक्तियाँ कुछ इस प्रकार हैं–

''जरा हवा चलती है
कहीं एक पत्ता
पट्ट से
गिरता है जमीन पर''

इन पंक्तियों में कवि कोई अनोखी बात नहीं कह रहा है परन्तु इन पंक्तियों के पीछे जो दर्शन छिपा है उसे समझना अत्यावश्यक है। हवा का चलना और पत्ते का गिरना यह इंगित करता है कि स्थितियाँ प्रतिक्षण बदल रही हैं। वक्त चाहे कितना भी अच्छा चल रहा है, वह पल भर में बदल सकता है। वे कोई तूफान की बात नहीं करते जिससे पूरा पेड़ या पत्ता टूट रहा है। 'जरा हवा' चलने से ही पत्ता टूट गया है। इसलिए वे कविता के पाठकों को भी तमाम चुनौतियों के लिए तैयार रहने को

कहते हैं। यही कारण है कि वे कहते हैं–

''एक महान कविता
ऊबने लगती है
अपनी स्फटिक गरिमा के अंदर
और जब सारा शहर सो जाता है
तो इन सारी कविताओं में
भरा अवसाद
दुनिया पर बरसता है
सारी–सारी रात''

ये पंक्तियाँ कविता के द्वंद्व को उजागर करती है। कवि या आलोचक जिन कविताओं को महान बताते हैं उनमें भी अवसाद भरा होता है, कवि उस ओर इशारा करते दिखाई पड़ते हैं। वस्तुतः यह जगत ही अन्तर्द्वन्द्व से भरा हुआ है। इस ब्रह्मांड में यह कल्पना करना कि कोई भी तत्व, जिसे हम जैसा देखते हैं वैसा ही होगा, असल में हमेशा ऐसा नहीं होता है। कविता की गरिमा और मर्यादा के पीछे विषाद, अवसाद, पीड़ा, त्रासदी और न जाने कौन–कौन से तत्त्व शामिल रहते हैं, केदार जी इन पंक्तियों में उसी ओर इशारा करते हैं।

कविता की तमाम सीमाओं को जानते हुए भी कविता की मजबूत जीवनीशक्ति उन्हें, सम्बल देती है। वे देखते हैं कि सम्पूर्ण विश्व गम्भीर त्रासदी से जूझ रहा है। साम्राज्यवाद दुनिया को लील रहा है लेकिन फिर भी उन्हें और उनकी कविता को भरोसा है कि 'मौसम' चाहे जैसा भी हो एक दिन बदलेगा जरूर। 'धन्यवाद' की आवृत्ति से स्पष्ट है कि वे जीवन में विश्वास करने वाले कवि है और उनकी कविताओं की भी प्रवृत्ति इससे अलग नहीं है।

शिल्प :– शिल्प की दृष्टि से अगर इस कविता का मूल्यांकन करें तो कवि की सहजता का बोध होता है।

कविता आकार में तो लघु है, लेकिन अपने भीतर गम्भीर निहितार्थ समाहित किये हुए है। इस कविता में लय और गति का अद्‌भुत सामंजस्य दिखाई पड़ता है। भाषा सामान्य रूप से सहज और प्रवाहमान है। केदारनाथ सिंह की भाषिक विशेषता यह है कि वे जानते हैं कि भले ही उनकी कविताओं को ग्रामीण लोग नहीं पढ़ेंगे बावजूद इसके वे उन्हीं की भाषा में कविता रचते हैं कि अगर भूले–भटके भी कभी हित ने उनकी कविता पढ़ी तो वे उसे समझ सकेंगे। कवि शब्दों के माध्यम से ध्वनि उत्पन्न करते हैं वे लिखते हैं–

''कहीं एक पत्ता
पट्ट से
गिरता है जमीन पर।''

'पट्ट से' के बिना भी पंक्ति पूरी हो सकती थी लेकिन वह ध्वनि नहीं उत्पन्न हो पाती जिसे कवि उत्पन्न करना चाहता है इसलिए वहाँ पर 'पट्ट' का प्रयोग बहुत व्यंजक है। पूरी कविता एक लय में बद्ध है। देशज और लोक शब्दों के प्रयोग

में निष्णात कवि केदार इस कविता में 'टाइप' जैसे अंग्रेजी शब्दों का भी प्रयोग करते हैं। केदारनाथ सिंह की यह विशेषता है कि वे कहीं के भी शब्दों का सुन्दर चयन अपनी रचनाओं के लिए कर लेते हैं। मुक्त छंद में लिखी गयी यह कविता अपने विशिष्ट शैलीगत प्रयोगों की वजय से पाठकों को आकर्षित करती है।

'रोटी' कविता की संवेदना :– कई कवियों ने 'रोटी' पर कविताएँ लिखी हैं। केदारनाथ सिंह की भी कई रचनाओं में रोटी के महत्व को प्रतिपादित किया गया है। स्वतंत्र रूप से 'रोटी' शीर्षक कविता भी उन्होंने लिखी। केदार जी पर विमर्श करते हुए यह बात हमेशा ध्यान में रखी जानी चाहिए कि वे ग्रामीण संवेदनाओं के कवि हैं। उन्होंने अपने आरंभिक जीवन में ही 'रोटी' की अहमियत को समझ लिया था। वे जिस परिवेश में पले–बढ़े, वहाँ अन्न का अनादर करना न केवल अशोभनीय था अपितु पाप सरीखा था। आज भले ही महानगरीय संस्कृति के विकसित होने पर लोग प्लेटों में आधा भोजन छोड़ना शान की बात समझते हैं लेकिन ग्रामीण समाज इसे आज भी हर स्तर पर रोकने की कोशिश करता है। अन्न उपजाने के पीछे जो कठोर परिश्रम होता है उसे ग्रामीण लोग जानते हैं, वे यह भी जानते हैं कि गरीबी, भुखमरी के इस दौर में कई घरों में चूल्हा नहीं जलता। ऐसे में रोटी के प्रति उनका सम्मान स्वाभाविक ही है। अपनी एक कविता में वे लिखते हैं–

''रात को रोटी जब भी तोड़ना
तो पहले सिर झुकाकर के
गेहूँ के पौधे को याद कर लेना''

यह आदर की भावना यूँ ही उत्पन्न नहीं होती। 'रोटी' कविता जहाँ से आरम्भ हो रही हैं वह पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं–

''उसके बारे में कविता करना
हिमाकत की बात होगी
और वह मैं नहीं करूँगा''

रोटी बनने की जो प्रक्रिया है वह कवि को अंदर तक झकझोर देती है। वह जानता है कि रोटी जब किसी की थाली में परोसी जाती है उससे पहले जो उसकी रचना प्रक्रिया है वह बेहद कष्टदायी है। गेहूँ की बालियों से आटे तक का सफर, फिर आटे का गुथा जाना, बेला जाना और फिर तवे पर पकना। यह एक ऐसी प्रक्रिया जिसे कवि ने नजदीक से देखा है। इसीलिए वह रोटी को 'दुनिया की सबसे आश्चर्यजनक चीज' बताता है। यह कविता हमें कई स्तरों पर सोचने को मजबूर करती है। केदारनाथ लिखते हैं–

''मैंने उसका शिकार किया है
मुझे हर बार ऐसा ही लगता है
जब मैं उसे आग से निकलते हुए देखता हूँ''

वस्तुतः रोटी कोई शिकार की जाने वाली वस्तु नहीं है लेकिन आज की पूंजीपति राजनीति प्रतिदिन उनका शिकार कर रही है जो अन्न उपजाते हैं, जिससे रोटी बनना सम्भव हो पाता है। ऐसे कृषक मजदूर बनने पर मजबूर हैं, शहरों की ओर पलायन को मजबूर हैं और सरकार के विकास के नाम पर अपनी कृषि योग्य भूमि से विस्थापित होने को मजबूर हैं। यह

विडंबना है कि कोई भी नेता चुनाव लड़ने से पहले किसानों की ही बातों को अपने घोषणापत्र के केंद्र में रखता है, लेकिन सांसद–विधायक, बनते ही उनकी चिंता और वफादारी के केंद्र में अन्य लोग चले आते हैं और किसान नेपथ्य में चला जाता है। कविता की अंतिम पंक्तियाँ बहुत मार्मिक हैं। वे लिखते हैं–

''आप देखेंगे
दीवारें धीरे–धीरे
स्वाद में बदल रही हैं।''

आखिर यह किसकी दीवारें हैं जो स्वाद की वस्तु बन रही हैं? और कौन है वह जो इसका स्वाद चख पा रहा है। सच्चाई यह है कि किसान और आदिवासी समाज आज अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ रहा है। उन्हीं के घर, जंगल और जमीन पर पूंजीपतियों की नजर हैं, उन्हें उनकी ही भूमि से बेदखल कर पूंजीपति वर्ग वहाँ के खनिजों को निकाल कर मालामाल बनने के प्रयास में है। कवि ने सूक्ष्म संवेदनात्मक ढंग से इस कविता में 'रोटी' को केंद्र में रखकर आज के यथार्थ से समाज को अवगत कराने का सुंदर प्रयास किया है।

शिल्प :– केदारनाथ सिंह मूलतः मानवीय संवेदनाओं के कवि है। अपनी कविताओं में उन्होंने बिंब–विधान पर अधिक बल दिया है। केदारनाथ सिंह की कविताओं में शोर–शराबा ना होकर, विद्रोह का शांत और संयम स्वर सशक्त रूप में उभरता है। 'जमीन पक रही है' संकलन में जमीन, रोटी, बैल आदि उनकी इसी प्रकार की कविताएँ हैं। संवेदना और विचारबोध उनकी कविताओं में साथ–साथ चलते हैं। जीवन के बिना प्रकृति और वस्तुएँ कुछ भी नहीं हैं यह अहसास उन्हें अपनी कविताओं में आदमी के और समीप ले आया है। इस प्रक्रिया में केदारनाथ सिंह की भाषा और भी नम्य और पारदर्शी हुई है और उनमें एक नयापन आया है। उनकी कविताओं में रोजमर्रा के जीवन के अनुभव परिचित बिंबों में बदलते दिखाई देते हैं। शिल्प में बातचीत की सहजता और अपनापन अनायास ही दृष्टिगोचर होता है। गंवई भाषा की छोंक भी कविता की विशेषता है 'पकना' जैसे शब्द उसी के द्योतक हैं।

14.4 निष्कर्ष

अतः कहा जा सकता है कि केदारनाथ सिंह मूलतः मानवीय संवेदना के कवि हैं इनकी संवेदना किसी दायरे तक सीमित नहीं है बल्कि समस्त चराचर मनुष्य, पशु, पक्षी, प्रकृति, पहाड़, जंगल आदि तक इनकी संवेदना दिखाई देती है। इन्होंने अपनी कविता में बिंब विधान पर अधिक बल दिया है इनकी कविताओं में किसी तरह का शोर शराबा न होकर विद्रोह का शांत और संभत स्वर सशक्त रूप से उभरता है। उनकी कविताओं में रोजमर्रा के जीवन के अनुभव परिचित बिंबों में बदलते दिखाई देते हैं। शिल्प में बातचीत की सहजता और अपनापन झलकता है।

14.5 कठिन शब्द

1. अवाक
2. अनायास
3. अस्मत
4. जिजीविषा

5. विषमता
6. नश्वरता
7. निष्णात
8. अस्तित्व
9. विषाद
10. अंतर्द्वन्द्व

14.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र. 1. 'नमक' कविता की मूल संवेदना पर प्रकाश डाले।

_____

_____

_____

प्र. 2. 'बुद्ध से' कविता का भावार्थ स्पष्ट करें।

_____

_____

_____

प्र. 3. 'रोटी' कविता का मूल्यांकन करे।

_____

_____

_____

14.7 संदर्भ ग्रंथ

1. आधुनिक हिन्दी कविता में बिंब विधान – केदारनाथ सिंह
2. प्रतिनिधि रचनायें – केदारनाथ सिंह
3. केदारनाथ सिंह का काव्य लोक – डॉ. शेरपाल सिंह